पंजीयन संख्या : 68939/98

ज्ञान तत्व

सत्यता एवं निष्पक्षता का निर्भीक पाक्षिक

JAN 2026
अंक - 25

487

ज्ञान यज्ञ क्यो, क्या और कैसे? 3

नई समाज व्यवस्था 4

MARGDARSHAK

प्रकाशन की तिथि - 15-02-2026 पोस्ट की तिथि - 28-02-2026

सिंहावलोकन

साथियों की कलम से....

9 **परिवार, विश्वास और महिला-पुरुष संबंधों का पुनर्संतुलन**

14 **यूजीसी और आरक्षण विमर्श श्रम और बुद्धि के संतुलन की चुनौती**

15 **ज़ूम चर्चा कार्यक्रम**

16 **धर्म का संप्रदाय में पतन - ज्ञानेन्द्र आर्य**

17 **जीवन पथ**

18 **संस्थागत समाचार**

पत्र व्यवहार का पता

बजरंग लाल अग्रवाल पोस्ट बाक्स 15, रायपुर (छ.ग.) 492021

website : margdarshak.info

प्रकाशक, संपादक व स्वामी - बजरंगलाल

9617079344

mail : Support@margdarshak.info

मुख्य कार्यालय-
ज्ञानयज्ञ परिवार आश्रम
रामानुजगंज छत्तीसगढ़ 497220
8318621282, 9630766001

लोक स्वराज अभियान
303 कृष्णा शिप्रा अजूरा अपार्टमेंट कौशांबी
गाजियाबाद 201012
9325683604, 9012432074

प्रधान संपादक
बजरंग लाल अग्रवाल
(बजरंग मुनि)

संपादक मण्डल
नरेन्द्र सिंह
संजय तिवारी
विपुल आदर्श

सहयोगी संपादक
ज्ञानेन्द्र आर्य

सदस्यता नियमन
संजय गुप्ता 872669477
कुशल दुबे 7999934238

सज्जा
लाल बाबू रवि

वितरण एवं मुद्रण सहयोग
रबीन्द्र विश्वास

ज्ञान यज्ञ क्यो, क्या और कैसे?

बजरंग मुनि
प्रधान संपादक

हम पूरे विष्व की समीक्षा करे तो भौतिक विकासतेज गति से हो रहा है और लगभग उतनी ही तेज गति से नैतिक पतन भी हो रहा है। भौतिक समस्याओ का समाधान हो रहा है और चारित्रिक पतन की समस्याएं विस्तार पा रही हैं। भावना और बुद्धि के बीच भी अंतर बढता जा रहा है। शरीफ लोगो की संख्या भी बढती जा रही है तो चालाक और धूर्त लोगो की संख्या भी बढ रही है। शरीफ और धूर्त के बीच ध्रुवीकरण हो रहा है और समझदारी निरंतर घट रही है । हर धूर्त यह प्रयत्न कर रहा है किअन्य लोग समझदार न होकर शरीफ बनों अर्थात भावना प्रधान हों । विचार प्रचारबहुत तेज गति से हो रहा है और विचार मंथन की प्रकृया लगातार घट रही है।विपरीत विचारो के लोग अलग अलग गिरोहों मे बंटकर संगठित हो रहे हैं तो विपरीत विचारो के लोग एक साथ बैठकर कभी समस्याओकी न तो चर्चा करते हैं न समाधान सोचते हैं। यहां तक कि पूरे विष्व मे विपरीत विचारो के लोग एक दूसरे के विरूद्ध बिना विचारे इतने सक्रिय हो जाते है कि उसका लाभ धूर्त उठाते है। हर कार्य मे आम नागरिकों की सक्रियता बढती जा रही है भले ही वह एक दूसरे के विरूद्ध ही क्यों न हो। यदि हम भारत की समीक्षा करें तो भारत दुनियां की तुलना मे कुछ अधिक ही समस्या ग्रस्त है। राज्य और समाज के बीच शक्ति संतुलन मालिक और गुलाम सरीखा हो गया है। सब प्रकार के धूर्त राज्य के साथ निरंतरजुडने का प्रयास कर रहे है तो सभी शरीफ समाज के साथ इकठ्ठे हो रहे है। राज्य सुरक्षा और न्याय न देकर भौतिक उन्नति को अधिक महत्व दे रहा है। सुरक्षा और न्याय की परिभाषाए बदली जा रही है। मानवाधिकारके नाम पर अपराधियो को विषेष सुरक्षा दी जा रही है तो न्याय के नाम पर कमजोरो और मजबूतो के बीच टकराव बढाया जा रहा है।परिणाम स्वरूप समाज के शरीफ लोगोद्वारा सुरक्षा और न्याय के लिये अपराधियो की मदद लेना मजबूरी बन गया है। राज्य पूरी शक्ति से वर्ग समन्वय को समाप्त करके वर्ग निर्माण वर्ग विद्वेषऔर वर्ग संघर्ष को प्रोत्साहित कर रहा है। धर्म जाति भाषा क्षेत्रियताउम्र लिंग गरीब अमीर किसान मजदूर शहरी ग्रामीण आदि के नाम पर समाज मे अलग अलग संगठन बनाकर उनमे वर्ग विद्वेष का कार्य योजना बद्ध तरीके से राज्य कर रहा है । षिक्षा और ज्ञान के बीच भी लगातार असंतुलन पैदा किया जा रहा है। षिक्षा को योग्यता का विस्तार न मानकर रोजगार के अवसर के रूप मे बदलने का लगातार प्रयास हो रहा है। परिणाम हो रहा है कि षिक्षा और श्रम के बीच असंतुलन बढता जा रहा है। पूरे भारत मे हिंसा के प्रति विष्वास बढता जा रहा है। अनेक असत्य धारणाए सत्य के समान स्थापित हो रही है। अच्छे अच्छे विद्वान नहीं बता पाते कि व्यक्ति और नागरिक मे क्या अंतर है, समाज राष्ट्र और धर्म मे कौन अधिक महत्वपूर्ण है, षिक्षा और ज्ञान मे क्या अंतर है, अपराध गैर कानूनी और अनैतिक मे क्या अंतर है, कार्यपालिका और विधायिका मे क्या अंतर है आदि आदि। स्पष्टहै कि समस्याए दिख रही है और समाधान नहीं दिख रहा । समस्याओ का अंबार लगा है। समाधान कहां से शुरू करें यह समझ मे नही आ रहा । इन सब परिस्थितियों का आकलन करके ही बासठ वर्ष पूर्व हम कुछ मित्रो ने रामानुजगंज शहर मे ज्ञान यज्ञकी शुरूआत की । रामानुजगंज मे बासठ वर्षो से प्रतिमाह की एक निष्चित तारीख को आधे घंटे की धार्मिक प्रक्रिया से प्रारंभ करके दो घंटे की एक पूर्व निष्चित विषय पर चर्चा होती है जो अबतक सफलता पूर्वक जारी है। अबतक करीब तीन सौ अलग अलग विषयो पर स्वतंत्र चर्चा हो चुकी है । अन्य नये विषय भी शामिल होते है। सोचा गया था कि एक शहर यदिसमस्याओ के समाधान मे आगे बढकरआदर्ष प्रस्तुत करेगा तो अपने आप देष पर उसका प्रभाव पडेगा । रामानुजगंज शहर मे इस प्रयत्न को अच्छी सफलता भी मिली किन्तु धीरे धीरे वे सफलताए रामानुजगंज से बाहर विस्तार नही कर सकीं क्योकि बाहर के लोगो को शराफत से आगे निकालकर समझदारी की ओर ले जाने का हमने कोई प्रयास नही किया। बल्कि उसका दुष्परिणाम हुआ कि रामानुजगंज पर भी बाहर की हवाओ का प्रभाव धीरे धीरे पडने लगा। बाहर के सभी शरीफ और धूर्त इकठ्ठे होकर रामानुजगंज की व्यवस्था के विरूद्ध सक्रिय हो गये। वहां भी साम्प्रदायिकता अथवा जातिवाद के नाम पर संगठन बनने लगे । वहां भी राजनैतिक टकराव आंषिक रूप से पैर फैलने लगा । कर्मचारियो और नागरिको के बीच की एकता कमजोर होने लगी। अब तो ऐसा भी दिख रहा है कि वहां धीरे धीरे अपराधियोका भी प्रवेष शुरू हो जायेगा । चोरी डकैती गुंडा गर्दी दादागिरी से अभी तक तो सुरक्षित है किन्तु जब सामाजिक एकता ही छिन्न भिन्न हो जायेगी तो कब तक बचा सकेंगे। स्पष्ट है कि हम प्रयोग मे सफल होकर भी असफल हुए, क्योकि ऐसे वैचारिक प्रयोग किसी एक क्षेत्र से सफल नही हो पाते । इसलिये यह सोचा गया कि अब ज्ञान यज्ञ का विस्तार राष्टीय स्तर पर हो । साथ ही हम समस्याओ का समाधान करने का प्रयत्न न करे। हम वर्ग विद्वेष मे सक्रिय समूहो का विरोध न करके सामाजिक एकता की एक और अधिक बडी लकीर खीचने का प्रयास क्यो न करें। इसका अर्थ हुआ कि हम जाति धर्म भाषा आदिके नाम पर बने संगठित समूहो का विरोध न करके एक संयुक्त समूह की ओर बढने का प्रयत्न करे जैसा रामानुजगंज मे प्रारंभ मे किया गया था। अर्थात ज्ञान यज्ञ

के नाम से एक प्रकार के लोग एक साथ बैठने की आदत डाले । भले ही वे किसी भी संगठन के सदस्य क्यो न हो। ज्ञान यज्ञ की विधि बहुत सरल है। पूरा कार्यक्रम यदि तीन घंटे का है तो आधा घंटा यज्ञ यथवा किसी अन्य भावनात्मक धार्मिक कार्यक्रम से श्रद्धा पूर्वक शुरूआत करनी चाहिये। यह समय पूरे कार्यक्रम का एक/छः से अधिक न हो । दो घंटा किसी एक पूर्व निष्चित विषय पर स्वतंत्र विचार मंथन होना चाहिये जिसमे विपरीत विचारो के लोग अपनी बात स्वतंत्रता पूर्वक कहने की हिम्मत कर सके और दूसरे लोग विपरीत विचारो को सुनने की अपनी सहन शक्ति जागृत कर सकें। अंतिम आधा घंटा मे स्वराज्य प्रार्थना तथा प्रसाद वितरण आदि का कार्य होता है। आयोजक अपनी श्रद्धा अनुसार धार्मिक क्रिया के लिये स्वतंत्र है। चर्चा का विषय भी चुनने के लिये आयोजक स्वतंत्र है। किन्तु वक्ता की स्वतंत्रता को किसी भी परिस्थिति मे बाधित नही किया जा सकता भले ही वह किसी की भावनाओ के विरूद्ध ही क्यो न हो। ज्ञान यज्ञ के बैनर तले कोईसामूहिक निष्कर्ष निकालना प्रतिबंधित है । सब लोग व्यक्तिगत निष्कर्षनिकालने को स्वतंत्र हैं । ज्ञान यज्ञ के बैनर तले न कोई भी अन्य सक्रियता हो सकती है न ही योजना बन सकती है। अर्थात ज्ञान यज्ञ परिवार का सदस्य व्यक्तिगत रूप से अथवा अन्य बैनर तले बाढ सहायता राष्ट्रीय संकट मे मदद या भूखो को भोजन आदि सेवा कार्य करने को स्वतंत्र है, किन्तु ज्ञान यज्ञ के नाम से पूरी तरह प्रतिबंधित है। ज्ञान यज्ञ की केवल एक ही सक्रियता है कि भिन्न विचारो के लोग एक साथ बैठकर स्वतंत्रता पूर्वक विचार मंथन कर सके तथाभावना और बुिद्ध के बीच विवेक एंव शराफत और चालाकी के बीच समझदारी का विस्तार हो सके। मै समझता हूॅ कि ज्ञान यज्ञ परिवार वर्ग निर्माण वर्ग विद्वेष को रोकने का प्रयास छोडकर वर्ग मुक्त वर्ग खडा करने का जो भी प्रयास करेगा वह अपने आप स्वाभाविक रूप से समाधान होगा । समस्याओ का समाधान करने मे तो भारत मे गली गली मे लोग मिल जायेगे किन्तु ज्ञान यज्ञ का प्रयास यह है कि समस्याओ की प्राकृतिक रूप से आधोषित तरीके से कम होने की प्रणाली विकसित की जाये । ज्ञान यज्ञ एक ऐसी ही सफल प्रणाली है जिसमे ज्ञान यज्ञ परिवार पूरे राष्टीय स्तर पर सक्रिय हो रहा है। ज्ञान यज्ञ परिवार मे जुडने के लिये एक ही शर्त है कि ऐसे व्यक्ति को कम से कम वर्ष मे एक बार ज्ञान यज्ञ मे शामिल होने की प्रतिबद्धता स्वीकार करनी चाहिये। ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को हम ज्ञान यज्ञ परिवार का सदस्य मान रहे है। इस सदस्यता मे कोई जाति धर्म का भेद नही है। अपराध निरपराध का भी भेद नही है। राष्टीयता का भी भेद नही है। प्रत्येक मनुष्य ज्ञान यज्ञ परिवार का सदस्य बन सकता है। इस सदस्यता का न कोई शुल्क है न कोई अन्य प्रतिबद्धता। मै समझता हूॅ कि विनोबा जी ने ऐसे कार्य को नाहक मिलन शब्द से स्थापित किया था । मुझे तो पूरा विष्वास है कि ज्ञान यज्ञ के माध्यम से हम समाज सषक्तिकरण की दिषा मे तेजी से कदम बढा सकेंगे और समाज सषक्तिकरण अनेक समस्याओ का समाधान करने मे सफल होगा । हमारे कुछ मित्र ग्राम संसद अभियान के माध्यम से राज्य कमजोरी करण का जो अभियान चला रहे है उनकी सफलता के लिये भी हम ईष्वर से प्रार्थना करते है। अपनी बासठ वर्ष की सक्रियता तथा अनुभव के आधार पर मै आष्वस्त हूॅ कि भारत की सभी समस्याओ के समाधान की शुरूआत ज्ञान यज्ञ विस्तार के माध्यम से हो सकती है। जब भिन्न विचारो के लोग अपने अपने संगठनो मे रहते हुए भी एक साथ बैठकर चर्चा करने की आदत डालेगे तो परिणाम अवष्य ही अच्छे होंगे । इसी आधार पर हम ज्ञान यज्ञ परिवार का राष्टीय स्तर पर सफलता पूर्वक विस्तार कर रहे है। कुछ लोग मानते है कि इसका कोई बडा लाभ नही होगा । हो सकता है ऐसा हो किन्तु मै आस्वस्त हूॅ कि इस प्रयत्न का कोई नुकसान नही होगा। जो लोग अन्य प्रयत्नो मे लगे है उनके किसी प्रयत्न मे ज्ञान यज्ञ परिवार जरा भी बाधक नही है। वे अपने प्रयत्नो मे सफल हो इससे हमे कोई कठिनाई नही। ज्ञान यज्ञ परिवार नये तरीके से समाज सषक्तिकरण का कार्य कर रहा है।

नयी समाज व्यवस्था :

1. व्यवस्था सुधार नहीं, अब व्यवस्था परिवर्तन अनिवार्य है

हम नई समाज-व्यवस्था पर चर्चा कर रहे हैं। व्यवस्था में सुधार और व्यवस्था परिवर्तनकृये दोनों अलग-अलग बातें हैं। वर्तमान परिस्थितियों में हम व्यवस्था परिवर्तन पर जोर दे रहे हैं, क्योंकि हमारा यह मानना है कि अब ऐसा नया वातावरण बन चुका है जिसमें हमें वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था से यह कहने की आवश्यकता महसूस हो रही है "मुझे तुमसे कुछ भी नहीं चाहिए, बस मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो।" अर्थात, परिस्थितियाँ ऐसी बन गई हैं कि जिसे हमने अपनी सुरक्षा का दायित्व सौंपा था, वही आज हमारी सबसे बड़ी समस्या बन गया है। कल्पना कीजिएकृ हमने एक पहरेदार नियुक्त किया, और वही पहरेदार हमारे ऊपर बोझ बन गया। हमने किसी व्यक्ति को छह महीने के लिए एक गाय की देखभाल की जिम्मेदारी दी, और उसने गाय की कीमत से कई गुना अधिक खाने-पीने का बिल बना दिया। ठीक उसी प्रकार, हमने सरकार को अपनी सुरक्षा की जिम्मेदारी दी थी, लेकिन सरकार हमसे जो कर (टैक्स) वसूल रही है, उसका लगभग तीन-चौथाई हिस्सा सरकारी कर्मचारियों के वेतन और साज-सज्जा पर खर्च हो रहा है,

और शेष एक-चौथाई ही किसी रूप में जनता को वापस मिल रहा है। एक कहानी प्रचलित है किसी राजा ने एक व्यक्ति को ₹100000 दान देने की घोषणा की। वह व्यक्ति राजा के पास जाकर बोला महाराज कृपया यह ₹100000 मुझे मत दीजिए क्योंकि इससे अधिक राशि तो आपके कर्मचारी ही मुझसे घूस के रूप में मांग रहे हैं। आज स्थिति कुछ वैसी ही हो गई है। अब हम सरकार से यह कहने की अवस्था में पहुँच गए हैंकृ हमने आपको कंबल समझा थालेकिन आप तो भालू निकले। कृपया हमारी जान बख्श दीजिए। हमें आपसे कुछ नहीं चाहिए। हम अपनी सुरक्षा स्वयं कर लेंगे।" यही है व्यवस्था परिवर्तन। इसलिए आइए, हम सब मिलकर सरकार से यह मांग करें मुझे तुमसे कुछ भी नहीं चाहिए। मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो और मुझे स्वतंत्रता दे दो।

2. दबाव हटते ही संतुलन लौट आता है बच्चों से समाज तक

मुझे तुमसे कुछ भी नहीं चाहिए, बस मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो। इसी बात को आगे बढ़ाते हुए आज मैं आपके सामने एक छोटा-सा प्रयोग रखना चाहता हूँ। मैंने चार-पाँच बच्चों से कहा कि वे धीरे-धीरे एक नए तरीके से चलना सीखें। मैंने उन्हें समझाया कि जब बायाँ पैर आगे बढ़े तो दायाँ हाथ आगे बढ़ाओ, और जब दायाँ पैर आगे बढ़े तो बायाँ हाथ आगे बढ़ाओ। इस प्रकार चलने से शरीर को अधिक संतुलन और सुविधा मिलेगी। मैंने बच्चों को काफी देर तक इस तरीके की ट्रेनिंग दी, लेकिन वे सभी एक साथ इस ढंग से चलना नहीं सीख सके। बार-बार उनसे गलतियाँ हो रही थीं। मैंने बहुत प्रयास किया, पर परिणाम नहीं निकला। अंत में मैंने उनसे कहा "अच्छा, अब तुम लोग अपने तरीके से ही चलो।" और तब जो दृश्य सामने आया, वह आश्चर्यजनक था। सभी बच्चे स्वाभाविक रूप से वही कर रहे थेकृबायाँ पैर आगे तो दायाँ हाथ आगे, और दायाँ पैर आगे तो बायाँ हाथ आगे। यानी वे बिल्कुल उसी तरीके से चल रहे थे, जैसा मैंने उन्हें सिखाने की कोशिश की थी, लेकिन अब बिना किसी दबाव के। इससे यह स्पष्ट होता है कि समाज अपने पारंपरिक और स्वाभाविक तरीके से स्वयं ठीक चलता है। गलतियाँ तब शुरू होती हैं, जब राज्य सत्ता समाज को जबरन किसी अलग तरीके से चलाने का प्रयास करती है। यदि परिवार व्यवस्था, ग्राम व्यवस्था और समाज व्यवस्था को उनके अपने ढंग से चलने दिया जाएकृजब तक वे कोई अपराध नहीं कर रहे हैंकृतो समाज स्वतः संतुलित और सुचारु रूप से चलने लगता है। इससे राज्य की अनावश्यक सक्रियता भी स्वतः कम हो जाती है। मेरा राज्य से यही निवेदन है कि वह समाज को चलने दे, बीच-बीच में अनावश्यक छेड़छाड़ न करे।

3. लोक स्वराज परिवार से विश्व तक सुरक्षा की साझा जिम्मेदारी

हम लगातार एक नई राजनीतिक व्यवस्था का प्रारूप तैयार कर रहे हैं। जिस लोक स्वराज प्रणाली का प्रारूप हम प्रस्तावित कर रहे हैं, उसमें परिवार से लेकर पूरी दुनिया तककृसभी स्तरों पर अपनी-अपनी आंतरिक व्यवस्थाएँ होंगी। यह स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति की सुरक्षा की जिम्मेदारी केवल एक इकाई की नहीं होगी। उसकी सुरक्षा की जिम्मेदारी परिवार की भी होगी, गाँव की भी, देश की भी और अंततः पूरी विश्व-व्यवस्था की भी। इस प्रकार, प्रत्येक व्यक्ति को अलग-अलग स्तरों से सुरक्षा प्राप्त होगी और अंतिम रूप से विश्व-व्यवस्था उसकी सुरक्षा की गारंटी देगी। अर्थात, यदि दुनिया में किसी व्यक्ति की असुरक्षा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, किसी सरकार द्वारा या किसी भी अन्य इकाई द्वारा उत्पन्न होती है, तो उसकी जिम्मेदारी विश्व-व्यवस्था की मानी जाएगी। इस व्यवस्था के अंतर्गत विश्व का प्रत्येक व्यक्ति सुरक्षा की सुनिश्चित परिधि में आ जाएगा। यह सुरक्षा केवल जान-माल तक सीमित नहीं होगी। इसमें व्यक्ति के

1.जीवन की सुरक्षा,
2.अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता,
3.संपत्ति की सुरक्षा, और
4.स्वनिर्णय का अधिकार

इन सभी की गारंटी शामिल होगी। इन अधिकारों को मौलिक अधिकार घोषित किया जाएगा, और व्यक्ति की स्वतंत्रता को मूल अधिकार के रूप में स्वीकार किया जाएगा। किसी भी स्थिति में किसी व्यक्ति की सुरक्षा को कोई अन्य व्यक्ति, कोई सरकार या कोई भी अन्य इकाई खतरे में नहीं डाल सकेगी। यही लोक स्वराज आधारित नई राजनीतिक व्यवस्था का मूल आधार होगा।

4. तानाशाही बनाम लोकतंत्र सदियों से चला आ रहा अनिर्णय

हम तानाशाही और लोकतंत्र के बीच सैकड़ों वर्षों से एक अनिर्णय की स्थिति में खड़े हैं। दुनिया के अनेक देश तानाशाही शासन के अंतर्गत तीव्र प्रगति करते दिखाई देते हैं, वहीं अनेक लोकतांत्रिक देशों में अराजकता, अस्थिरता और शासन-अक्षमता बढ़ती जा रही है। सुशासन के लिए यह आवश्यक है कि शासन शक्तिशाली हो, किंतु उसी शक्ति पर किसी न किसी रूप में नियंत्रण भी हो। यह एक सिद्ध सिद्धांत है कि व्यक्ति की स्वतंत्रता एक ओर असीम प्रतीत होती है, तो दूसरी ओर शून्य भी हो जाती हैकृक्योंकि जैसे ही व्यक्ति समाज से जुड़ता है, उसकी स्वतंत्रता व्यक्तिगत न रहकर सामूहिक हो जाती है। ऐसी स्थिति में तानाशाही और लोकतंत्र के बीच किसी वैकल्पिक मार्ग की खोज अनिवार्य हो जाती है। तानाशाही में प्रगति की गति तेज होती है, किंतु उसका समर्थन नहीं किया जा सकता क्योंकि वह स्वतंत्रता का दमन करती है। दूसरी ओर, वर्तमान स्वरूप में लोकतंत्र भी असफल सिद्ध हो रहा है; अतः लोकतंत्र का एक संशोधित और अधिक उत्तरदायी रूप आवश्यक है। इसी संदर्भ में हमने "लोक स्वराज" नामक एक संशोधित शासन प्रणाली का प्रारूप प्रस्तुत

किया है। तानाशाही पर नियंत्रण लोकतंत्र नहीं कर सकता, क्योंकि वह स्वयं आंतरिक रूप से बीमार हो चुका है। और तानाशाही को स्वीकार करना स्वतंत्र समाज के लिए संभव नहीं है। इसलिए अब लोकतंत्र के विकल्प के रूप में लोक स्वराज को सामने लाना आवश्यक है, ताकि दुनिया को तानाशाही के खतरे से मुक्त किया जा सके।

5. समाज, तंत्र और व्यक्ति भूमिकाओं की स्पष्ट सीमा रेखा

समाज, तंत्र और व्यक्ति तीनों की भूमिकाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। तंत्र समाज का प्रबंधक होता है, जबकि व्यक्ति का शासक। जब समाज और तंत्र के बीच कार्य-विभाजन होता है, तब समाज का यह दायित्व बनता है कि वह तंत्र को केवल उतनी ही जिम्मेदारियाँ सौंपे, जितनी उसकी क्षमता के भीतर हों। यदि क्षमता से अधिक कार्यभार दिया जाएगा, तो अव्यवस्था का जन्म स्वाभाविक है। दूसरी ओर, तंत्र से भी यह अपेक्षा की जाती है कि वह केवल उतना ही कार्य स्वीकार करे, जितना वह प्रभावी रूप से निभा सकता हो। यदि कोई कार्य उसकी क्षमता से बाहर है, तो उसे समाज के समक्ष अपनी असमर्थता स्पष्ट रूप से प्रकट करनी चाहिए। क्षमता से अधिक जिम्मेदारी स्वीकार करना तंत्र के लिए भी उतना ही गलत है, जितना समाज द्वारा उसे थोपना। वर्तमान भारत में हम यह देख रहे हैं कि तंत्र लगभग सभी जिम्मेदारियाँ अपने ऊपर समेटता जा रहा है, जबकि उन्हें निभाने की उसकी वास्तविक क्षमता सीमित है। दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि कई मामलों में समाज ने स्वयं ये जिम्मेदारियाँ तंत्र को नहीं सौंपीं, फिर भी तंत्र उन्हें अपने अधिकार क्षेत्र में ले रहा है। समाज ने यह नहीं कहा कि आप जुआ रोकें, शराब रोकें, तंबाकू रोकें या बाल विवाह रोकें, फिर भी तंत्र ने इन विषयों को अपने नियंत्रण में ले लिया हैकृऔर वह भी संदिग्ध नीयत के साथ। नई सामाजिक व्यवस्था में हम तंत्र की वास्तविक शक्ति और क्षमता का आकलन करके ही उसे कार्य सौंपेंगे। शेष कार्य तंत्र से वापस लिए जाएँगे। यदि तंत्र स्वेच्छा से यह जिम्मेदारियाँ नहीं छोड़ेगा, तो समाज अपने अधिकारों को दृढ़ता से पुनः प्राप्त करेगा। समाज स्वामी है; तंत्र केवल उसका साधन है। तंत्र को जितना कार्य वह स्वीकार करे, उसे पूर्ण रूप से निभाना चाहिए। यदि वह किसी कार्य को पूरा नहीं कर सकता, तो उसे उसे स्वीकार ही नहीं करना चाहिए। हम सुरक्षा और न्याय के अतिरिक्त सभी कार्य तंत्र से वापस लेने का संकल्प रखते हैं और तंत्र से केवल यही अपेक्षा करेंगे कि वह सुरक्षा और न्याय को प्रभावी, निष्पक्ष और सफलतापूर्वक सुनिश्चित करे।

6. समाज व्यवस्था और राज्य व्यवस्था मान्यता बनाम अनुशासन का मूल भेद

किसी भी व्यवस्था में दो भिन्न विभाग होते हैंकृएक समाज व्यवस्था और दूसरी राज्य व्यवस्था। समाज व्यवस्था सामाजिक मान्यताओं के आधार पर समाज का निर्माण करती है, जबकि राज्य व्यवस्था मान्यताओं से हटकर व्यवस्था और संचालन को प्राथमिकता देती है। मान्यता और व्यवस्था के बीच मूलभूत अंतर होता है। मान्यताएँ केवल हृदय परिवर्तन के माध्यम से ही समाज में स्थापित की जा सकती हैं; उन्हें किसी शासन या दंडात्मक व्यवस्था के द्वारा थोपा नहीं जा सकता। हृदय परिवर्तन की प्रक्रिया में अनुशासन की कोई भूमिका नहीं होती। इसके विपरीत, व्यवस्था के निर्माण में मान्यताओं की नहीं, बल्कि अनुशासन की प्रधानता होती है। दुर्भाग्यवश, हमारी वर्तमान राज्य व्यवस्था इस अंतर को समझने में असफल रही। उसने उच्च आदर्शवादी और अव्यावहारिक सिद्धांत गढ़े और उन्हें शासन-शक्ति के माध्यम से लागू करने का प्रयास किया, जो मूलतः एक त्रुटिपूर्ण प्रक्रिया थी। इसका परिणाम यह हुआ कि धर्म व्यवस्था क्रमशः कमजोर होती चली गई और सामाजिक व्यवस्था को भी गंभीर क्षति पहुँची। साथ ही, राज्य व्यवस्था भी अपने मूल कर्तव्यों का निर्वहन ठीक से नहीं कर पाई। मेरा स्पष्ट सुझाव है कि राज्य व्यवस्था को उच्च आदर्शवादी सिद्धांत गढ़ने से बचना चाहिए और स्वयं को समाज में अनुशासन स्थापित करने तक ही सीमित रखना चाहिए। प्रवचन देना, उपदेश देना और हृदय परिवर्तन कराना राज्य व्यवस्था का कार्य नहीं है; यह धर्म व्यवस्था का क्षेत्र है। धर्म और राज्य को एक-दूसरे से जोड़ना सदैव हानिकारक सिद्ध हुआ है। नई व्यवस्था में हमारा प्रयास होगा कि धर्म व्यवस्था और राज्य व्यवस्था को स्पष्ट रूप से अलग-अलग रखा जाए, ताकि दोनों अपनी-अपनी भूमिका को स्वतंत्र, प्रभावी और संतुलित रूप से निभा सकें।

7. विचार बनाम विस्तार संघ की वृद्धि का अंतर्निहित कारण

मैं आर्य समाज, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और सर्वोदय इन तीनों के साथ निरंतर संपर्क में रहा हूँ। तीनों के गुण-दोषों का मुझे निकट से अनुभव है। मेरे अनुभव में यह स्पष्ट हुआ कि आर्य समाज और सर्वोदय की तुलना में संघ भारत में कहीं अधिक विस्तार कर सका। यह भी एक तथ्य है कि आर्य समाज के विचार, संघ की तुलना में अधिक प्रगतिशील और तर्कसंगत थे। दूसरी ओर, सर्वोदय के पास गांधी जैसा एक अत्यंत सम्मानित और प्रेरणादायक व्यक्तित्व था, जबकि संघ के पास इन दोनों में से किसी का भी स्पष्ट लाभ नहीं था। इसके बावजूद संघ आगे बढ़ता गया। इस विरोधाभास पर जब मैंने गंभीरता से विचार किया, तो यह निष्कर्ष सामने आया कि आर्य समाज ने अपने प्रारंभिक काल में खंडन और मंडन के बीच संतुलन बनाए रखा, किंतु धीरे-धीरे वह खंडन की दिशा में अधिक झुकता चला गया। उसने श्रद्धा पर अत्यधिक प्रहार किया। इसके विपरीत, संघ किसी भी प्रकार के खंडन से दूर रहा।

उसने बिना शोर किए, चुपचाप अपना कार्य किया। आर्य समाज ने प्रचार का सहारा लिया, जबकि संघ ने प्रचार से दूरी बनाए रखी। संघ कछुए की चाल से निरंतर आगे बढ़ता रहा, जबकि आर्य समाज खरगोश की चाल से आगे बढ़ा। अंततः संघ आगे निकल गया, क्योंकि समाज खंडन पर विश्वास नहीं करता; वह श्रद्धा को अधिक महत्व देता है। दूसरी ओर, सर्वोदय इसलिए पीछे रह गया क्योंकि उसने गांधी के मार्ग को छोड़कर साम्यवादी धारा को अपनाया। सर्वोदय ने नेहरू परिवार और सत्ता के साथ तालमेल कर लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि सर्वोदय अपनी मूल पहचान खो बैठा और आज वह लगभग समाप्ति की अवस्था में पहुँच गया है। जहाँ सर्वोदय लगभग समाप्त हो चुका है, वहीं आर्य समाज आज भी जीवित है। आर्य समाज को इस वास्तविकता पर गंभीरता से विचार करना चाहिए और अपने ऐतिहासिक अनुभवों से आवश्यक निष्कर्ष निकालने चाहिए।

8. महिला-पुरुष संबंध समाज नहीं, परिवार और व्यक्ति का विषय

हमारी समाज व्यवस्था स्पष्ट रूप से गलत दिशा में आगे बढ़ रही है। महिला और पुरुष के बीच आपसी संबंध कैसे हों यह तय करना परिवार का कार्य है, समाज का नहीं। किंतु वर्तमान स्थिति यह है कि समाज लगातार इस क्षेत्र में अनावश्यक हस्तक्षेप करता जा रहा है। महिलाओं को कैसे कपड़े पहनने चाहिए, कैसे बोलना चाहिए, उन्हें शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए या पारिवारिक कार्यों तक सीमित रहना चाहिए ये सभी निर्णय या तो परिवार द्वारा लिए जाने चाहिए या स्वयं व्यक्ति द्वारा। समाज को इन मामलों में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। इसी सामाजिक हस्तक्षेप का परिणाम है कि आज यह प्रश्न विवादास्पद बन गया है कि महिला और पुरुष के बीच व्यक्तिगत दूरी कम होनी चाहिए या बढ़नी चाहिए। समाज स्वयं इस विषय पर किसी स्पष्ट निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पा रहा है। वास्तविकता यह है कि महिला और पुरुष के बीच स्वाभाविक और संतुलित आकर्षण बना रहना चाहिए। किंतु पिछले कुछ समय से यह अनुभव किया जा रहा है कि कुछ लोगों की गलतियों और सामाजिक दखलअंदाजी के कारण यह आकर्षण धीरे-धीरे विकर्षण में परिवर्तित होता जा रहा है। इसके परिणाम भविष्य में अत्यंत गंभीर हो सकते हैं। जन्मदर में तीव्र गिरावट आएगी, जिसे बाद में चाहकर भी बढ़ा पाना संभव नहीं होगा। साथ ही, अप्राकृतिक यौन आचरण में भी तीव्र वृद्धि होने की आशंका है। इसीलिए एक समाज-विज्ञानी के रूप में मैं समाज को सावधान करना चाहता हूँ कि वह परिवार के आंतरिक और निजी मामलों में हस्तक्षेप पूरी तरह बंद करे। केवल निकम्मे और दिशाहीन धर्मगुरु ही यह उपदेश देते हैं कि विवाह कब होना चाहिए या महिला और पुरुष के बीच संबंध कैसे होने चाहिए। राज्य व्यवस्था तो पहले से ही इस विषय में पूरी तरह गलत दिशा में जा रही है, किंतु समाज से अभी भी अपेक्षा की जा सकती है कि वह आत्ममंथन करे, अपनी सीमाएँ पहचाने और परिवार तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता का सम्मान करे।

9. ₹400 प्रतिदिन का श्रम-मूल्य गरिमा और जीवन की न्यूनतम गारंटी

नई समाज व्यवस्था में हम बेरोजगारी की वर्तमान परिभाषा को पूरी तरह बदल देंगे। हमारे अनुसार बेरोजगारी की सही परिभाषा यह होगी योग्यता के अनुसार कार्य और न्यूनतम घोषित वेतन की सुनिश्चित गारंटी। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि हम प्रत्येक व्यक्ति के लिए समान न्यूनतम वेतन घोषित करेंगे। कोई भी व्यक्ति बेरोजगार नहीं रहेगाकृचाहे वह विकलांग हो, गरीब हो, श्रमजीवी हो या डॉक्टर। सभी को समान वेतन मिलेगा, जबकि कार्य उनकी योग्यता और क्षमता के अनुसार दिया जाएगा। व्यक्ति को यह स्वतंत्रता होगी कि वह जितने समय तक चाहे कार्य करे, और यदि चाहे तो किसी भी समय कार्य छोड़ भी सकता है। भारत की वर्तमान परिस्थितियों में न्यूनतम घोषित श्रम-मूल्य ₹300 प्रतिदिन माना जा सकता है, किंतु मेरे विचार से इसे ₹400 प्रतिदिन रखना अधिक उपयुक्त और न्यायसंगत होगा। इस नई बेरोजगारी परिभाषा में धर्म, जाति या लिंग का कोई भेद नहीं होगा। यह गारंटी प्रत्येक व्यक्ति के लिए समान रूप से लागू होगी। इस प्रकार हम एक ही दिन में भारत को बेरोजगारी-मुक्त घोषित कर सकते हैं। कोई भी व्यक्ति भूखा नहीं रहेगा, क्योंकि हर व्यक्ति को न्यूनतम मजदूरी की सुनिश्चित गारंटी होगी और वर्ष भर कार्य उपलब्ध रहेगा। वर्तमान में प्रचलित बेरोजगारी की परिभाषा मूलतः त्रुटिपूर्ण है और इसे बदला जाना आवश्यक है। विश्व भर में बेरोजगारी की गलत परिभाषाएँ अनेक भ्रम, असंतोष और टकराव को जन्म देती हैं। हमारी व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार, घोषित वेतन पर, कहीं भी कार्य करने के लिए स्वतंत्र होगा।

10. न्याय में बाधक कानून सत्य, गोपनीयता और दंड का प्रश्न

वर्तमान स्थिति में हमें समाज में स्पष्ट रूप से अराजकता दिखाई दे रही है। इसका मुख्य कारण यह है कि आज राज्य या सरकार के पास न्यूनतम शक्ति है, जबकि उस पर अधिकतम दायित्व लाद दिए गए हैं। सिद्धांततः स्थिति इसके ठीक विपरीत होनी चाहिएकृराज्य के पास अधिकतम शक्ति और न्यूनतम दायित्व होने चाहिए। यह गलती समाज से हुई है या राज्य सेकृइस पर बहस हो सकती है, किंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि कहीं न कहीं मूलभूत त्रुटि अवश्य हुई है। सामान्यतः यह धारणा प्रचलित है कि वर्तमान समय में राज्य के पास अत्यधिक शक्ति है, किंतु मैं इस मत से सहमत नहीं हूँ। मेरे विचार से

राज्य के पास आज उतनी शक्ति नहीं है, जितनी उसे होनी चाहिए थी। वर्तमान कानून के अनुसार राज्य किसी अपराधी को सत्य बोलने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। मेरे मत में यह कानून मूलतः गलत है। यदि किसी व्यक्ति के किसी अपराध में सम्मिलित होने के प्राथमिक प्रमाण सिद्ध हो जाते हैं, तो उसे सत्य बोलने के लिए बाध्य किया जाना चाहिए। और यदि वह सत्य नहीं बोलता, तो उसे प्रत्यक्ष रूप से अपराधी मान लिया जाना चाहिए। गोपनीयता से संबंधित कानून भी अनेक मामलों में न्याय प्रक्रिया में बाधक बनते हैं। इसी कारण हम इस विषय में एक नई व्यवस्था पर विचार कर रहे हैं। नई व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्तिगत स्वतंत्रता असीम होगी, किंतु उसकी स्वतंत्रता संयुक्त भी होगी। व्यक्ति जिस परिवार से जुड़ेगा, उस परिवार के भीतर उसकी असीम स्वतंत्रता स्वाभाविक रूप से संयुक्त स्वतंत्रता में परिवर्तित हो जाएगी। इस प्रकार व्यक्ति की स्वतंत्रता और सहजीवन की अनिवार्यता के बीच संतुलन को ही समाज-विज्ञान का आधार माना जाना चाहिए, और इसी आधार पर समाज व्यवस्था का निर्माण होना चाहिए। मैं पुनः स्पष्ट करना चाहता हूँ कि राज्य को अधिकतम शक्ति और न्यूनतम दायित्व के सिद्धांत का पालन करना चाहिए, जिसे वर्तमान राज्य व्यवस्था निभाने में असमर्थ दिखाई दे रही है।

11. राज्य की भूमिका का विचलन जहाँ ध्यान भटका, वहीं संकट बढ़ा

हम इस निष्कर्ष तक पहुँच चुके हैं कि भारत में कुल ग्यारह समस्याएँ ऐसी हैं जो निरंतर बढ़ती जा रही हैं। इन समस्याओं को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पहली श्रेणी अपराधिक समस्याओं की है, जिनकी संख्या पाँच है, और दूसरी श्रेणी सामाजिक समस्याओं की है, जिनकी संख्या छह है। पाँच अपराधिक समस्याओं को रोकने की जिम्मेदारी राज्य और सरकार की थी, जबकि छह सामाजिक समस्याओं को नियंत्रित करने की क्षमता समाज के पास थी। किंतु दुर्भाग्यवश राज्य ने अपराधिक समस्याओं की तुलना में सामाजिक समस्याओं पर अधिक ध्यान देना शुरू कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि सामाजिक समस्याएँ लगातार बढ़ती चली गईं और अपराधिक समस्याएँ भी रुक नहीं सकीं। आज स्थिति यह है कि स्वतंत्रता के बाद से सभी ग्यारह समस्याएँ निरंतर बढ़ती जा रही हैं। पाँच समस्याएँ इसलिए बढ़ रही हैं क्योंकि राज्य उन्हें प्रभावी रूप से रोक नहीं पा रहा है, और छह समस्याएँ इसलिए बढ़ रही हैं क्योंकि राज्य उनमें अनावश्यक हस्तक्षेप कर रहा है। इस समूची स्थिति का मूल कारण यह है कि वर्तमान भारत में राज्य सर्वशक्तिमान बन गया है और समाज की शक्ति लगभग शून्य कर दी गई है। समाज एक प्रकार का परजीवी बन गया है, जिसे प्रत्येक कार्य के लिए राज्य की ओर ही देखना पड़ता है। इसी कारण नई व्यवस्था में हम इस समीकरण को बदलना चाहते हैं। राज्य की सामाजिक मामलों में हस्तक्षेप करने की शक्ति कम होनी चाहिए और समाज को पुनः सक्रिय होने का अवसर मिलना चाहिए। यही इन सभी समस्याओं का मूल समाधान है। आगे चलकर हम संसदीय लोकतंत्र को सहभागी लोकतंत्र में परिवर्तित करना चाहते हैं, जिसमें राज्य और समाज दोनों मिलकर समस्याओं का समाधान करेंगे। मुझे यह दृढ़ विश्वास है कि इस मार्ग पर चलकर इन सभी ग्यारह समस्याओं को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

12. संविधान की तंत्र-गुलामी समस्या की जड़

वर्तमान भारत की सबसे बड़ी समस्या यह है कि आज तंत्र सर्वशक्तिमान हो चुका है और लोक को पूरी तरह शक्तिहीन बना दिया गया है। यद्यपि यह समस्या किसी न किसी रूप में पूरी दुनिया में मौजूद है, किंतु भारत में यह अधिक तीव्रता से दिखाई देती है। जब तक लोक और तंत्र के बीच का यह असंतुलित समीकरण ठीक नहीं होगा, तब तक किसी भी प्रकार का वास्तविक परिवर्तन संभव नहीं है। कारण स्पष्ट हैकृतंत्र सर्वशक्तिमान है, उसकी नीयत विकृत होती जा रही है, और समाज शक्ति-शून्य बना दिया गया है। इस विषय पर हमने लंबे समय तक गंभीर विचार-मंथन किया है। इस समस्या के समाधान के लिए हमारे अनुसार सबसे पहला और सबसे आवश्यक कार्य यह है कि भारतीय संविधान को तंत्र की गुलामी से मुक्त किया जाए। संविधान संशोधन का अंतिम अधिकार केवल तंत्र के पास नहीं होना चाहिए; उसमें लोक की भी निर्णायक भूमिका होनी चाहिए। यदि हम इतना भी कर सकें, तो समस्याओं के समाधान की वास्तविक शुरुआत संभव है। अन्यथा, इसके अतिरिक्त जो भी समाधान प्रस्तुत किए जाएँगे, वे निर्णायक परिणाम नहीं दे पाएँगे। इसलिए मेरा समाज से विनम्र निवेदन है कि वह भारतीय संविधान को तंत्र की गुलामी से मुक्त करने के विषय पर गंभीर चिंतन-मंथन करे। तंत्र-मुक्त संविधान और लोक-आधारित समाज व्यवस्थाकृयही हमारा एकमात्र और मूल प्रयत्न होना चाहिए।

13 राजनीति, समाज और वर्ण व्यवस्था मूल कारणों पर केंद्रित चिंतन

कालीन सत्र में हम नई समाज व्यवस्था पर लगातार चर्चा कर रहे हैं। नई समाज व्यवस्था के मार्ग में हमें अनेक प्रकार की समस्याएँ दिखाई देती हैं, किंतु हम सभी समस्याओं का समाधान एक साथ नहीं कर सकते। जो समस्याएँ हमारे सामने प्रकट होती हैं, वे प्रायः दो-चार मूलभूत समस्याओं के दुष्परिणाम (बाय-प्रोडक्ट) मात्र हैं। यदि वे आधारभूत समस्याएँ दूर हो जाएँ, तो उनके लक्षण स्वतः समाप्त हो सकते हैं। इसलिए आवश्यक है कि हम लक्षणों पर अधिक चर्चा करने के बजाय मूल कारणों पर ध्यान केंद्रित करें। हमारी प्रमुख मूलभूत समस्याओं में पहली हैकृराजनीति का अत्यधिक सशक्तिकरण; दूसरीकृसमाज का निरंतर कमजोर होना; और तीसरीकृवर्ण व्यवस्था का

विघटन। यदि इन तीनों समस्याओं का संतुलित समाधान खोज लिया जाए, तो अनेक अन्य समस्याएँ स्वतः नियंत्रित हो सकती हैं। हमने इन तीनों मुद्दों के कारणों पर भी विचार किया है, उनके संभावित समाधानों पर भी मंथन किया है, और अपनी सक्रियता को उनसे जोड़ने का प्रयास किया है। पहली समस्या, राजनीति के अत्यधिक सशक्तिकरण, के समाधान हेतु हमारा मत है कि संविधान को तंत्र से मुक्त किया जाएकृअर्थात "तंत्र-मुक्त संविधान" की अवधारणा पर विचार किया जाए। दूसरी समस्या, समाज के कमजोर होने, के समाधान के लिए परिवार व्यवस्था को सशक्त बनाना आवश्यक है। तीसरी समस्या, वर्ण व्यवस्था के संदर्भ में, यह प्रस्ताव है कि "ब्राह्मण" शब्द के स्थान पर "मार्गदर्शक" शब्द की स्थापना की जाए, ताकि उसकी भूमिका अधिक दायित्वपूर्ण और समावेशी रूप में परिभाषित हो सके। यदि हम इन तीनों दिशाओं में एक साथ, संतुलित और गंभीर प्रयास कर सकें, तो विश्वास है कि हम व्यापक सामाजिक समस्याओं के समाधान की दिशा में ठोस शुरुआत कर पाएँगे।

14 परिवार व्यवस्था समाज की स्थिरता और संतुलन का आधार

हमारी संपूर्ण समाज व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण आधार हमारी परिवार व्यवस्था है। सामाजिक ढाँचा मूलतः परिवार पर ही टिकता है। जैसा कि मैंने पूर्व में लिखा था, मेरे मत में साम्यवादी विचारधारा परिवार व्यवस्था के लिए गहरे प्रभाव डालने वाली सिद्ध हुई है। इतिहास में विभिन्न देशों में लागू साम्यवादी प्रयोगोंकृजैसे ज्ञंतस डंतÛ के विचारों से प्रेरित व्यवस्थाएँकृने पारंपरिक पारिवारिक संरचनाओं को नए सिरे से परिभाषित करने का प्रयास किया। कई स्थानों पर इन प्रयोगों ने परिवार, संपत्ति और सामाजिक संबंधों की अवधारणा को बदलने की कोशिश की। यह भी देखा गया है कि कुछ वैचारिक धाराएँ महिला-पुरुष संबंधों, तथा युवा-वृद्ध संबंधों को संघर्ष की दृष्टि से देखने का आग्रह करती रही हैं। किंतु यह समझना आवश्यक है कि किसी भी विचारधारा के समर्थक और विरोधी दोनों अतिवाद की ओर जा सकते हैं। परिवार के भीतर पीढ़ियों के बीच संवाद और जिम्मेदारियों का संतुलित हस्तांतरण ही स्वस्थ समाज का आधार होता है। हमारी आदर्श परिवार व्यवस्था में युवा और वृद्ध की संयुक्त भूमिका होती हैकृयुवा सक्रियता और ऊर्जा लाते हैं, जबकि वृद्ध अनुभव और मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। जब युवा सक्षम होते हैं, तो वृद्ध उन्हें क्रमशः जिम्मेदारियाँ सौंपते हैं; और युवा भी निर्णय लेते समय बड़ों की सलाह का सम्मान करते हैं। यही संतुलन परिवार को स्थिर और सशक्त बनाता है। यह भी उतना ही सत्य है कि यदि वृद्ध पीढ़ी समय पर जिम्मेदारियाँ न सौंपे, तो ठहराव उत्पन्न होता है; और यदि युवा अधीर होकर वरिष्ठों को पूरी तरह किनारे कर दें, तो अनुभव का लाभ समाप्त हो जाता है। अतः टकराव के बजाय सहयोग, प्रतिस्पर्धा के बजाय संवाद, और विभाजन के बजाय समन्वय की आवश्यकता है। समाज की मजबूती किसी एक विचारधारा के समर्थन या विरोध से नहीं, बल्कि परिवारों के भीतर विश्वास, दायित्व और पारस्परिक सम्मान से निर्मित होती है। इसलिए आवश्यक है कि हम युवा और वृद्ध के बीच संतुलन बनाए रखें और परिवार व्यवस्था को सुदृढ़ करने की दिशा में सकारात्मक प्रयास करें।

परिवार, विश्वास और महिला-पुरुष संबंधों का पुनर्संतुलन

आवर्ण शोषण और महिला शोषण के प्रश्नों को मैं अलग दृष्टि से देखता हूँ। मेरे विचार से अवर्णों का शोषण व्यापक सामाजिक स्तर पर हुआ, जबकि महिलाओं से संबंधित अधिकांश समस्याएँ परिवार व्यवस्था के भीतर केंद्रित रहीं। समाज में अनेक संदर्भों में महिलाओं को सम्मान भी प्राप्त हुआ, यद्यपि परिवार व्यवस्था में उनकी भूमिका प्रायः सीमित रही। विशेषकर विवाह के बाद वे जिस परिवार में जाती थीं, वहाँ की संरचना और नेतृत्व के अधीन रहना उनकी परिस्थितिजन्य बाध्यता बन जाता था। यह भी देखा गया कि पत्नी के रूप में उनकी स्थिति अधिक सीमित रही, जबकि माँ या बहन के रूप में उन्हें अपेक्षाकृत अधिक सम्मान मिला। फिर भी, यह स्वीकार करना आवश्यक है कि परिवार व्यवस्था में महिलाओं को प्रायः सहयोगी की भूमिका तक सीमित रखा गया। अब इस व्यवस्था में परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। मेरा मानना है कि वैचारिक प्रभावों और राजनीतिक हस्तक्षेपों के कारण महिला और पुरुष के बीच अविश्वास की एक दीवार खड़ी हो गई है। जब तक यह अविश्वास दूर नहीं होगा, नई सामाजिक संरचना का निर्माण कठिन रहेगा। इस दिशा में पहल पुरुषों को भी करनी चाहिए, क्योंकि समाज में बहुसंख्यक महिलाएँ टकराव की राजनीति का हिस्सा नहीं हैं। अतः महिला-पुरुष संबंधों में संवाद और विश्वास पुनर्स्थापित करना आवश्यक है। महिला-पुरुष संबंध समाज व्यवस्था की नींव से जुड़े हैं, इसलिए इन पर गंभीर और संतुलित चर्चा आवश्यक है। मेरा मत है कि सामाजिक स्तर पर महिलाओं के साथ जो अन्याय या अत्याचार बताए जाते हैं, उनमें से कई घटनाएँ व्यक्तिगत स्तर की रही हैं, न कि संपूर्ण समाज या वर्गगत स्तर की। फिर भी जहाँ वास्तविक त्रुटियाँ हुई हैं, उन्हें स्वीकार कर सुधारना चाहिए। इस संदर्भ में कुछ बिंदुओं पर पुनर्विचार आवश्यक है। पहली भूल यह रही कि महिला और पुरुष को अलग-अलग वर्ग के रूप में देखने की प्रवृत्ति बढ़ी, जबकि वे भिन्न व्यक्ति हो सकते हैं, स्थायी वर्ग नहीं। दूसरी, परिवार को केवल प्राकृतिक इकाई मान लिया गया, जबकि उसे संगठनात्मक और उत्तरदायी इकाई के रूप में

विकसित किया जाना चाहिए था। तीसरी, महिला-पुरुष समानता के स्थान पर प्रत्येक व्यक्ति की समानता पर बल देना अधिक उचित होता। चौथी, महिला-पुरुष संबंधों में राजनीतिक हस्तक्षेप को अत्यधिक स्थान दे दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप स्पष्ट दिशा का अभाव बना रहा। अब आवश्यकता है कि परिवार को एक सशक्त संगठनात्मक इकाई के रूप में पुनर्स्थापित किया जाए, जहाँ महिला और पुरुष का भेद किए बिना सभी सदस्यों की संयुक्त और सहभागी भूमिका हो। परिवार के प्रत्येक सदस्य को सहभागी माना जाए, केवल सहयोगी नहीं। महिला-पुरुष संबंधों में अनावश्यक राजनीतिक हस्तक्षेप कम किया जाए, ताकि संबंधों का आधार परस्पर सम्मान और विश्वास हो। संभव है कि इस प्रकार के संतुलित और रचनात्मक उपाय महिला-पुरुष टकराव की प्रवृत्ति को कम करने में सहायक सिद्ध हों। आगे भी इस विषय पर चर्चा जारी रखी जा सकती है।

आरक्षण विमर्श इतिहास, न्याय और भविष्य की दिशा

हम लंबे समय से आरक्षण के समाधान पर चर्चा करते रहे हैं। यह तर्क दिया जाता है कि स्वतंत्रता से पहले सामाजिक संरचना और भेदभावपूर्ण व्यवस्थाओं के कारण श्रमजीवी वर्गों का शोषण हुआ, जिसके परिणामस्वरूप दलित और आदिवासी जैसी पहचानें सामाजिक रूप से वंचित समूहों के रूप में उभरीं। स्वतंत्रता के बाद अपेक्षा थी कि इस ऐतिहासिक अन्याय का संतुलित समाधान खोजा जाएगा, किंतु अनेक लोगों का मत है कि समस्या का स्थायी समाधान खोजने के बजाय राजनीतिक लाभ के लिए इसे बनाए रखा गया। परिणामस्वरूप आज जातिवाद, सामाजिक तनाव और विभिन्न प्रकार की असमानताएँ बनी हुई हैं। मेरे विचार से इस प्रश्न के समाधान पर गंभीर और बहुस्तरीय मंथन आवश्यक है। एक दृष्टिकोण यह हो सकता है कि श्रम का सामाजिक और आर्थिक मूल्य इतना बढ़ाया जाए कि बुद्धि और श्रम के बीच की दूरी स्वाभाविक रूप से कम हो जाए। यदि समाज में श्रम को पर्याप्त सम्मान और पारिश्रमिक मिले, तो आरक्षण की आवश्यकता स्वतः घट सकती है। यदि यह तात्कालिक रूप से संभव न हो, तो दूसरा विकल्प यह हो सकता है कि दायित्वों और पदों के निर्धारण में योग्यता को प्रमुख आधार बनाया जाए, जबकि वंचित वर्गों को शिक्षा, प्रशिक्षण और जीवन-यापन की सुविधाओं में विशेष सहयोग दिया जाए, ताकि वे समान प्रतिस्पर्धा की स्थिति तक पहुँच सकें। तीसरा संभावित विकल्प यह हो सकता है कि जिन वर्गों को आरक्षण प्राप्त है, उसके भीतर भी आर्थिक रूप से अत्यंत कमजोर लोगों को प्राथमिकता दी जाए, ताकि लाभ वास्तविक जरूरतमंदों तक अधिक प्रभावी रूप से पहुँचे। इन विकल्पों पर व्यापक सामाजिक सहमति और संवैधानिक विमर्श के साथ विचार किया जाना चाहिए। आरक्षण की ऐतिहासिक जड़ों पर विचार करते हुए कुछ लोग यह मानते हैं कि समस्या तब गहरी हुई जब कर्माधारित (कर्मणा) व्यवस्था के स्थान पर जन्माधारित (जन्मना) व्यवस्था ने स्थान ले लिया। जब सामाजिक भूमिकाएँ कर्म और योग्यता के बजाय जन्म से निर्धारित होने लगीं, तब असमानता और जड़ता बढ़ी। इतिहास में कई सुधारकोंकृजैसे स्वामी दयानंद सरस्वती और महात्मा गांधीकृने सामाजिक सुधार और समानता की दिशा में प्रयास किए। स्वतंत्रता के बाद आरक्षण नीति को संविधान के माध्यम से संरचित रूप मिला, जिसमें जवाहरलाल नेहरू और भीमराव रामजी आंबेडकर जैसे नेताओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही। उनके दृष्टिकोण का उद्देश्य ऐतिहासिक अन्याय को दूर करना था, यद्यपि आज भी इस नीति के स्वरूप और प्रभाव पर व्यापक मतभेद मौजूद हैं। स्पष्ट है कि आरक्षण का प्रश्न केवल नीति का नहीं, बल्कि इतिहास, सामाजिक संरचना, आर्थिक असमानता और राजनीतिक प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। इसलिए किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले संतुलित, तथ्याधारित और संवेदनशील चर्चा आवश्यक है, ताकि सामाजिक समरसता बनी रहे और न्याय का उद्देश्य भी पूरा हो सके। चर्चा आगे भी जारी रह सकती है।

भारतीय लोकतंत्र का विकार विपक्ष को अनिवार्यता बना देने की भूल

आदर्श लोकतंत्र में सत्ता पक्ष और विपक्ष जैसी स्थायी पहचानों का कोई अस्तित्व नहीं होता। सभी लोग परिस्थिति के अनुसार सत्ता पक्ष के साथ भी हो सकते हैं और विपक्ष के साथ भी। किसी व्यक्ति या समूह की कोई स्थिर राजनीतिक पहचान अनिवार्य नहीं होती। लेकिन वर्तमान भारत में जो प्रदूषित लोकतंत्र विकसित हुआ है, उसमें विपक्ष का होना एक अनिवार्य शर्त मान लिया गया है। आज की भारतीय राजनीति में विपक्ष के रूप में राहुल गांधी जैसे अपेक्षाकृत शरीफ व्यक्ति को स्थापित किया गया है। किंतु वास्तविकता यह है कि राहुल गांधी का दुरुपयोग कई शक्तियाँ करना चाहती हैंकृचाहे वह ट्रंप हों, प्रियंका गांधी हों या ममता बनर्जी। सभी राहुल गांधी के स्थान को हथियाने के लिए व्याकुल दिखाई देते हैं। यह तथ्य अब स्पष्ट हो चुका है कि भारतीय राजनीति में प्रियंका गांधी और ममता बनर्जी का आगे बढ़ना, राहुल गांधी की तुलना में कई गुना अधिक खतरनाक सिद्ध हो सकता है। इसका कारण यह है कि जहाँ राहुल गांधी अपेक्षाकृत सरल और गैर-चालाक हैं, वहीं प्रियंका और ममता दोनों राजनीतिक रूप से अत्यंत चतुर हैं। साथ ही, निकट भविष्य में राहुल गांधी का राजनीतिक पतन भी लगभग निश्चित दिखाई देता है। ऐसी परिस्थिति में यह प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है कि भारत अपनी लोकतांत्रिक सुरक्षा कैसे सुनिश्चित करे।

इस दिशा में हम दो समानांतर मार्गों पर विचार कर रहे हैं। पहला यह कि सत्ता पक्ष और विपक्ष की पारंपरिक धारणा को समाप्त कर निर्दलीय लोकतंत्र को एक आवश्यकता के रूप में समाज में स्थापित किया जाए। दूसरा प्रयास यह है कि वर्तमान स्थिति में राहुल गांधी, प्रियंका गांधी और ममता बनर्जीकृइन तीनों से अलग हटकर एक नए विपक्ष की कल्पना की जाए। ऐसा विपक्ष जो अतीत के बोझ से मुक्त हो, व्यक्तिवाद से ऊपर उठकर सोचे और देश को एक नया, संतुलित तथा वास्तविक लोकतांत्रिक विकल्प प्रदान कर सके।

केरल में राहुल गांधी के बयानों का विश्लेषण जनता पर सीमित प्रभाव

राहुल गांधी ने आज केरल की आमसभा में कहा कि भारतीय जनता पार्टी और नरेंद्र मोदी सत्ता के केंद्रीकरण पर विश्वास करते हैं, जबकि कांग्रेस पार्टी सत्ता का विकेंद्रीकरण चाहती है। यदि हम स्वतंत्रता के बाद कांग्रेस पार्टी के इतिहास को देखें, तो स्पष्ट होता है कि कांग्रेस ने कभी भी वास्तव में सत्ता का विकेंद्रीकरण नहीं किया। यहां तक कि 70 वर्षों के बाद पहली बार उन्होंने अपने परिवार के बाहर से किसी को अध्यक्ष बनाया। अब राहुल गांधी स्वयं प्रियंका गांधी को इसके लिए तैयार कर रहे हैं, ताकि राजनीतिक नेतृत्व कभी भी उस खानदान से बाहर न जाए। ऐसे व्यक्ति का केरल में इस तरह का बयान देना यह दर्शाता है कि वह सम्पूर्ण समाज को मूर्ख समझते हैं और स्वयं को बुद्धिमान मानते हैं। स्वतंत्रता के बाद सत्ता का विकेंद्रीकरण वास्तव में कब हुआ? यही सवाल उठता है। उदाहरण के तौर पर, जब सोनिया गांधी ने अध्यक्ष को हटाया और परिवार के बाहर किसी को पद प्रदान किया, इसे ही वास्तविक सत्ता का विकेंद्रीकरण माना जा सकता है। इसलिए मेरा सुझाव है कि राहुल गांधी ईमानदारी से बोलना सीखें। उन्हें गंभीरता से विचार करना चाहिए कि उनके कथनों का देश की जनता पर कोई प्रभाव क्यों नहीं पड़ रहा, या उल्टा क्यों पड़ रहा है। एक समय था जब प्रचार माध्यमों के माध्यम से झूठ को सच बनाया जा सकता था, लेकिन वर्तमान समय सोशल मीडिया का है। अब झूठ को सच बनाना उतना आसान नहीं रहा। यही कारण है कि राहुल गांधी की इतनी मेहनत और प्रचार के बावजूद आम जनता पर उनका प्रभाव सीमित है। कारण यह है कि वे सारी सत्ता अपने खानदान की मुट्ठी में रखना चाहते हैं, और मीडिया के माध्यम से सत्ता के विकेंद्रीकरण की बात कर रहे हैं।

राहुल गांधी और विदेशी शक्तियाँ भारत में विफल सपनों का विश्लेषण

राहुल गांधी ने यह सपना देखा था कि वे सोरोज और हिडन वर्ग के साथ मिलकर भारत सरकार को चुनाव में पलट देंगे, लेकिन सरकार बच गई। कुछ महीने पहले राहुल गांधी ने दिशा बदली और ट्रंप की योजना के साथ मिलकर नए सपने देखने शुरू कर दिए। ट्रंप ने हाल ही में वेनेजुएला में राष्ट्रपति को हटाकर उपराष्ट्रपति को वहाँ स्थापित किया। ट्रंप ने ईरान में भी इसी प्रकार के प्रयास किए। इसी तरह राहुल गांधी ने भारत में भी कुछ इसी तरह के सपने देखे और उन पर विश्वास करके लगातार घोषणाएँ करते रहे। लेकिन राहुल गांधी यह भूल गए कि यह भारत है, वेनेजुएला नहीं और ईरान नहीं। जो लोग भारत की अर्थव्यवस्था को समाप्त होने का सपना देख रहे थेकृराहुल गांधी और ट्रंप दोनोंकृउनका सपना अब टूट चुका दिखाई देता है। उन्होंने लगातार प्रयास किए, लेकिन भारत की अर्थव्यवस्था पर कोई बड़ा प्रभाव नहीं पड़ सका। अब यह स्पष्ट रूप से अनुभव हो रहा है कि नरेंद्र मोदी केवल भारत के सर्वश्रेष्ठ नेता ही नहीं, बल्कि विश्व स्तर पर भी एक प्रभावशाली और सफल राजनेता सिद्ध हो रहे हैं। जिस तरह दुनिया ट्रंप के व्यवहार से विचलित हुई थी, उसका समाधान नरेंद्र मोदी ने शांति और संतुलन के साथ किया, यह वास्तव में अत्यंत गंभीर और प्रशंसनीय है। मैं राहुल गांधी से विनम्र निवेदन करूंगा कि वे विदेशी शक्तियों के साथ मिलकर सपने देखना बंद करें और भारत के अपने तरीकों और व्यवस्थाओं पर विश्वास करें। विदेशी शक्तियाँ केवल सपना दिखा सकती हैं, यथार्थ नहीं। इसलिए बोलते समय अधिक सोचें और कम बोलें।

मेनका गांधी पर सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणी व्यवस्था की सख्ती का संकेत

मुझे वह समय भी याद है जब हम लोगों ने मेनका गांधी जैसी अयोग्य महिला को केंद्र में मंत्री बनाया था वह हम लोगों की मजबूरी थी अन्यथा हर कोई जानता था कि मेनका गांधी में किसी तरह की योग्यता नहीं है। मेनका गांधी ने केंद्रीय मंत्री बनने के बाद जिस तरह की अराजक कार्यवाही की वह भी हम लोगों को बर्दाश्त करना पड़ा क्योंकि उनको बनाए रखना मजबूरी थी। आज सुप्रीम कोर्ट ने न्यायालय में मेनका गांधी को डांट कर जो कुछ किया उसके लिए सुप्रीम कोर्ट बधाई की पात्र है।इस अयोग्य महिला ने अनेक समस्याएं पैदा की हैं जिन समस्याओं से आज तक हम जूझ रहे हैं। यह अपने को पशु प्रेमी कहती है लेकिन इनका पशु प्रेम भी नाटक के अलावा कुछ नहीं है।कुत्तों के मामले में सुप्रीम कोर्ट जो कुछ भी सुनवाई कर रहा है उसमें सुप्रीम कोर्ट को और कठोर आदेश देना चाहिए मनुष्य मरते रहे और पशु प्रेमी अपना नाटक करते रहें यह नहीं चलेगा । सीधा-सीधा कुत्तों को मार देना

चाहिए और कोई समाधान नहीं है। मैं जानता हूं कि सरकार या सुप्रीम कोर्ट भी इतना कठोर आदेश नहीं देगी लेकिन मैं यदि तानाशाह होता तो मैं इस प्रकार के कुत्तों को एक-दो दिन में ही देश भर में खत्म करवा देता।

महाराष्ट्र नगर निगम चुनाव जनता का स्पष्ट संदेश

कल महाराष्ट्र नगर निगम के चुनाव परिणाम आए। यह केवल स्थानीय चुनाव नहीं थे; यह राजनीतिक दिशा और राष्ट्रीय चेतना की परीक्षा भी थे। जनता ने साफ कर दिया कि वह दबाव और टकरावपूर्ण राजनीति को स्वीकार नहीं करेगी। एक ओर ठाकरे परिवार की आक्रामक राजनीतिक भाषा थी, तो दूसरी ओर जनता की ओर से शांतिपूर्ण और संवैधानिक तरीके से सत्ता की जवाबदेही की मांग। महाराष्ट्र की जनता ने एकजुट होकर यह संदेश दिया कि वह राष्ट्रवाद, सामाजिक शालीनता और लोकतांत्रिक मूल्यों के पक्ष में खड़ी है। मुंबई की जनता ने भी स्पष्ट कर दिया कि वह दबाव और गुंडागर्दी को राजनीति में स्वीकार नहीं करती। पूरे महाराष्ट्र में यह राजनीति खारिज हुई, हालांकि मुंबई में इसके कुछ अवशेष अभी भी दिखाई देते हैं। राज ठाकरे की स्थिति पहले से कमजोर थी, और इस चुनाव में और सीमित हुई। वहीं उद्धव ठाकरे, जिन्हें कभी मर्यादित नेता माना जाता था, सत्ता में आने के बाद अवसरवादी गठबंधनों में उलझते दिखे। उनके यह कदम उनकी राजनीति और विश्वसनीयता को भारी नुकसान पहुँचा रहे हैं। यह स्पष्ट संदेश भी दिया गया कि भारत की जनता अब पहले से कहीं अधिक जागरूक और समझदार हो गई है। दिल्ली में अरविंद केजरीवाल की रणनीति सीमित हुई, हरियाणा में राहुल गांधी की स्थिति स्पष्ट हुई, बिहार में परिवार-केंद्रित राजनीति को चुनौती मिली और अब महाराष्ट्र में दबाव और आक्रामकता के सहारे चलने वाली राजनीति को भी जनता ने नकार दिया। इस चुनाव से यह साबित हुआ कि लोकतंत्र में जनता की चेतना सबसे बड़ी शक्ति है। पश्चिम बंगाल और अन्य राज्यों के लिए भी यही संदेश है राजनीतिक नेतृत्व को जनता की उम्मीदों और विवेक के अनुरूप काम करना होगा।

हिंदू राष्ट्र की आवाज़ भावनाओं और दिखावे के बीच अंतर

भारत में समय समय पर हिंदू राष्ट्र की आवाज़ उठती रहती है। कभी यह कहा जाता है कि सभी हिंदुओं को एकजुट हो जाना चाहिए, तो कभी हिंदुओं को सशस्त्र होने की सलाह दी जाती है। कुछ धर्मगुरु तो भाला जैसे शस्त्र रखने की बात भी करते हैं। मेरे विचार से ऐसी अधिकांश बातें गंभीर चिंतन से नहीं, बल्कि सस्ती लोकप्रियता हासिल करने के लिए कही जाती हैं। जो लोग हिंदुओं को संगठित होने की सलाह देते हैं, वे स्वयं संगठित नहीं हैं। न शंकराचार्य आपस में संगठित हैं, न धर्मगुरु, और न ही हिंदू राजनेता। ऐसे में दूसरों को संगठन का उपदेश देना केवल दिखावा प्रतीत होता है। इसी प्रकार जो लोग शस्त्र रखने की सलाह दे रहे हैं, उन्होंने स्वयं अपने जीवन में कभी किसी शस्त्र का प्रयोग नहीं किया है। इसलिए इस विषय में हिंदुओं को विशेष रूप से सावधान रहने की आवश्यकता है और ऐसे पेशेवर सलाहकारों से दूरी बनाए रखनी चाहिए। यदि हिंदुओं को संगठित होना ही है, तो मेरा स्पष्ट मत है कि उन्हें केवल वर्तमान सरकार के समर्थन में संगठित रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त किसी अन्य भावनात्मक या उकसावे वाले मुद्दे पर संगठित होने की आवश्यकता नहीं है। इससे सुरक्षा भी बनी रहेगी और समाज में अनावश्यक तनाव भी नहीं बढ़ेगा। यदि वास्तव में मुस्लिम आतंकवाद से कोई खतरा है, तो उसके विरोध में सभी शांतिप्रिय लोगों को एकजुट किया जाना चाहिए। इसमें ईसाई, यहूदी, पारसीकृकिसी के साथ भेदभाव नहीं होना चाहिए। यहाँ तक कि मुसलमानों में जो लोग शांति में विश्वास रखते हैं, उन्हें भी साथ जोड़ा जाना चाहिए। मुसलमानों के विरुद्ध हिंदुओं को संगठित करना न तो उचित है और न ही विवेकपूर्ण। अतः मेरा सुझाव है कि हम भावनाओं के बजाय बुद्धि से काम लें और इतनी सावधानी अवश्य रखें कि कोई भी हमारी भावनाओं का दुरुपयोग न कर सके। यही संतुलित और सुरक्षित मार्ग है।

भारत में संवाद और सतर्कता मुसलमान और समाज

भारत में मुसलमानों के साथ ऐतिहासिक रूप से अच्छे संबंध रहे हैं। हालाँकि, हाल के वर्षों में कुछ घटनाओं और अनुभवों ने दोनों पक्षों के बीच सतर्कता और तनाव बढ़ा दिया है। उदाहरण के लिए, ए.आर. रहमान ने बताया कि उन्हें फिल्मों में कई वर्षों से नफरत का सामना करना पड़ा। बनारस और अन्य शहरों में बुर्का पहनने वाली महिलाओं के प्रवेश पर रोक लगाने जैसी घटनाएँ और रोजगार के अवसरों में सतर्कता ने यह स्पष्ट किया है कि संवाद और समझ की कमी है। इस स्थिति का समाधान केवल आरोप या नफरत से नहीं हो सकता। मुसलमानों को भी अपने व्यवहार और आचरण पर आत्मसमीक्षा करनी चाहिए कि क्यों समाज उन्हें सतर्क दृष्टि से देखता है। समान रूप से, समाज को भी समझदारी और तर्कसंगत दृष्टिकोण अपनाना होगा। भारत हमेशा से सभी समुदायों को बराबरी और सम्मान के साथ जोड़ने का पक्षधर रहा है। यही समय है कि संवाद, आत्मसमीक्षा और समझदारी के माध्यम से हम सतर्कता और सुरक्षा को संतुलित करें। भारत अब मुसलमानों को मेहमान के रूप में नहीं, बल्कि समाज का बराबरी का हिस्सा मानता है।

नेहरू का प्रारंभिक दृष्टिकोण सांप्रदायिक संतुलन और विशेष अधिकार

यह बात सही है कि पंडित नेहरू ने स्वतंत्र भारत के शुरुआती वर्षों में एक ऐसा दृष्टिकोण अपनाया था, जिसमें देश को सांप्रदायिक दृष्टि से संतुलित बनाने का प्रयास किया गया। इसके अंतर्गत मुसलमानों को विशेष अधिकार दिए गए, ईसाइयों को प्रोत्साहित किया गया और साम्यवाद के विचारों को भी अपनाया गया। हिंदू मुक्त भारत बनाने के लिए इन सभी तत्वों का सामूहिक समर्थन आवश्यक माना गया। लेकिन दुर्भाग्य से अब नेहरू परिवार के नेतृत्व में ही भारत धीरे-धीरे सांप्रदायिकता मुक्त और संतुलित दिशा में बढ़ रहा है। राहुल गांधी ने कुछ दिन पहले कहा था कि किसी का समय हमेशा स्थायी नहीं रहताकृयह बात आज सच साबित हो रही है। नेहरू परिवार का समय भी 60 वर्षों के बाद लगातार बदल रहा है। आज हिंदुत्व धीरे-धीरे मजबूत हो रहा है, इस्लाम और ईसाई धर्म के राजनीतिक प्रभाव कम होते दिख रहे हैं, और साम्यवाद वैचारिक स्तर पर समाप्त हो चुका है। यही कारण है कि राहुल गांधी इस समय गंभीरता से विचार कर रहे हैं कि क्या उन्हें नेहरू की लाइन पर आंख बंद करके चलना चाहिए या वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य के साथ किसी तरह का समझौता करना चाहिए। मैं वह समय भी याद करता हूँ जब छोटी-छोटी घटनाओं पर मुसलमान सड़कों पर उतर जाते थे और हिंदू घरों में घुसते थेकृकश्मीर में हजरत मोहम्मद का बाल चोरी होना, म्यांमार के दंगे या फिलिस्तीन के समर्थन में प्रदर्शन जैसी घटनाएँ आम थीं। लेकिन अब स्थिति बदल रही है। आज हिंदू सक्रिय और संगठित होकर सड़क पर दिख रहे हैं, जबकि मुसलमान पत्थर चलाने में हिचकिचा रहे हैं। अब आमतौर पर यह महसूस किया जा रहा है कि यदि स्थिति नियंत्रण से बाहर जाएगी, तो सरकार भी सख्त कदम उठा सकती है। यह स्पष्ट संकेत है कि समय के साथ परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं और कोई स्थायी नहीं है।

युवा सशक्तिकरण बनाम वृद्ध संरक्षण क्या यह वास्तविक विरोध है?

मैंने आज एक विद्वान लेखिका क्षमा शर्मा का लेख पढ़ा, जिसमें उन्होंने लिखा है कि वर्तमान समय में वृद्ध माता-पिता या सास-ससुर को अत्यधिक प्रताड़ना का सामना करना पड़ रहा है। इस संदर्भ में तेलंगाना सरकार द्वारा एक ऐसे कानून की तैयारी की चर्चा है, जिसके अनुसार वृद्ध माता-पिता के लिए 10% वेतन कटौती की व्यवस्था की जा सकती है। इस प्रस्ताव की क्षमा जी ने प्रशंसा भी की है। देशभर के अन्य अनेक लेखक भी वृद्धों के समर्थन में आवाज उठाते रहे हैं। मैं वृद्धों के समर्थन में उठने वाली इस आवाज के विरुद्ध नहीं हूँ, लेकिन मैं इस विचार से असहमत हूँ कि केवल युवा सशक्तिकरण का नारा दिया जाए। एक ओर युवा सशक्तिकरण की बात होती है, और दूसरी ओर वृद्धों पर अत्याचार की चर्चा की जाती है। इन दोनों बातों में विरोधाभास दिखाई देता है, और ऐसे विरोधाभासी बयान प्रायः समाज में सुनने को मिलते हैं। कोई नारा देता है कि युवा महिलाओं को कराटे सीखना चाहिए, कोई कहता है “मैं लड़की हूँ, लड़ सकती हूँ”, और वहीं दूसरी ओर यह भी कहा जाता है कि युवा महिलाएँ और पुरुष वृद्धों के साथ अत्याचार कर रहे हैं। समझ में नहीं आता कि समाज में इस प्रकार की परस्पर विरोधी बातें क्यों उठाई जाती हैं। मेरे विचार में, युवा सशक्तिकरण और वृद्धों पर अत्याचारकृइन दोनों प्रकार के अतिरंजित नारे उचित नहीं हैं। इस विषय में सरकार को अत्यधिक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। चाहे युवा हो या वृद्ध, महिला हो या पुरुषकृसभी को समान अधिकार मिलने चाहिए। क्या यह संभव नहीं है कि सरकार स्पष्ट रूप से यह घोषणा करे कि जो व्यक्ति परिवार में संकट की स्थिति में हो, वह परिवार से अलग होकर सरकार के आश्रय में आ सकता है, और सरकार उसके भरण-पोषण की व्यवस्था करेगीकृचाहे वह महिला हो या पुरुष, युवा हो या वृद्ध, ब्राह्मण हो या दलित, कोई भी क्यों न हो? मेरा पुनः निवेदन है कि युवा और वृद्धों के बीच टकराव उत्पन्न करने के प्रयास समाज के लिए घातक सिद्ध हो सकते हैं।

क्या डोनाल्ड ट्रंप विश्व राजनीति के लिए रहस्य हैं या अस्थिर नेतृत्व का संकेत

अमेरिका के राष्ट्रपति अमेरिका के राष्ट्रपति ट्रंप पूरी दुनिया के लिए एक पहेली बने हुए हैं। कोई नहीं कह सकता कि वे किस क्षण क्या कर लेंगे, क्या बोल देंगे या कैसा व्यवहार करेंगे। मेरे अपने जीवन के अनुभव के अनुसार पागलपन की तीन अवस्थाएँ होती हैं। पहली अवस्था में व्यक्ति को ‘सनकी’ कहा जाता है, अर्थात वह बातचीत में बार-बार एक ही बात की मांग करता है। दूसरी अवस्था में व्यक्ति को ‘सिरफिरा’ कहा जाता है, जिसमें बातचीत के अलावा अन्य व्यवहार भी अनियंत्रित होने लगते हैं। तीसरी अवस्था में व्यक्ति को ‘पागल’ कहा जाता है। इस प्रकार के व्यक्तियों की कुछ विशेषताएँ भी बताई जाती हैं। पहली, वे सामान्य लोगों की तुलना में अधिक बुद्धिमान प्रतीत होते हैं। दूसरी, वे अधिक कामुक प्रवृत्ति के हो सकते हैं। तीसरी, पागलपन की अंतिम अवस्था तक पहुँचने से पहले वे अपने अधिकांश कार्यों में सफल दिखाई देते हैं। मेरे विचार से ट्रंप में ये तीनों गुण दिखाई देते हैं, इसलिए मुझे लगता है कि उनमें पागलपन की सभी

प्रवृत्तियाँ मौजूद हैं। अब तक ट्रंप ने दुनिया के सामने कोई बहुत बड़ी समस्या उत्पन्न नहीं की है। मादुरी का अपहरण या अन्य अनेक घटनाएँ कोई विलक्षण घटना नहीं हैं, क्योंकि दुनिया के कई देश इसी दिशा में बढ़ रहे हैं और संयुक्त राष्ट्र संघ असहाय दिखाई देता है। किंतु एक बात स्पष्ट हो गई है कि ट्रंप पहली और दूसरी अवस्था के बीच झूलते प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिए, नोबेल पुरस्कार के प्रति उनकी रुचि एक प्रकार की सनक जैसी लगती है, जो यह संकेत देती है कि वे पहली अवस्था से आगे बढ़ रहे हैं। इसी प्रकार, दुनिया भर के राजनेताओं के प्रति उनका कठोर और असभ्य व्यवहार भी दर्शाता है कि वे अस्थिरता की दिशा में बढ़ रहे हैं। मुझे यह भी आभास होता है कि उन्हें नींद नहीं आती होगी और वे संभवत: तेज दवाइयों का उपयोग कर रहे होंगे। धीरे-धीरे ये बातें भी सामने आ सकती हैं। फिलहाल यह अमेरिका का आंतरिक मामला है और इस संबंध में विश्व-स्तरीय हस्तक्षेप की कोई संभावना दिखाई नहीं देती। किंतु यदि यह स्थिति अमेरिका की सीमाओं से आगे बढ़ती है, तो परिस्थिति गंभीर हो सकती है। फिर भी, मेरा मानना है कि अमेरिका के लोगों को इस विषय पर गंभीरता से विचार करना चाहिए, क्योंकि किसी भी अस्थिर व्यक्ति के हाथ में इतनी बड़ी शक्ति का होना खतरनाक हो सकता है।

समकालीन भारत में वैचारिक द्वंद्व अविमुक्तेश्वरानंद प्रकरण और यूजीसी सुधार

वर्तमान भारत में दो घटनाएँ अत्यंत चर्चित रही हैं। पहली, शंकराचार्य अविमुक्तेश्वरानंद से जुड़ा टकराव, और दूसरी, यूजीसी में किए गए कुछ नियम परिवर्तन। इन दोनों घटनाओं पर मैंने गंभीरता से विचार किया है। अविमुक्तेश्वरानंद के मामले में मेरा मत स्पष्ट है कि मैं संघ के पक्ष में हूँ। अविमुक्तेश्वरानंद और संघ परिवार के बीच जो पुराना टकराव रहा है, उसे मैं मूलत: राजनीतिक मानता हूँ। मेरे विचार से इस विवाद का धर्म या समाज से प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। जहाँ तक यूजीसी के नियमों का प्रश्न है, इस विषय में मैं अभी पूरी तरह स्पष्ट नहीं हूँ। सैद्धांतिक रूप से मैं किसी भी प्रकार के आरक्षण के पक्ष में नहीं हूँ। वहीं, व्यावहारिक दृष्टि से अब तक मेरा यह मानना रहा है कि नरेंद्र मोदी, मोहन भागवत और योगी आदित्यनाथ मिलकर जो निर्णय करेंगे, मैं उसके साथ रहूँगा। अभी तक इस विषय पर सरकार, संघ परिवार या योगी आदित्यनाथ की ओर से कोई स्पष्ट रेखा निर्धारित नहीं की गई है, इसलिए मैं भी इस संबंध में अंतिम रूप से कुछ कहने की स्थिति में नहीं हूँ। यूजीसी के इस नियम परिवर्तन ने विपक्ष को भी स्पष्ट रुख अपनाने में कठिनाई में डाल दिया है और सत्ता पक्ष को भी। दि यह कानून इस विषय में कोई नई दिशा निर्धारित कर पाता है, तो मेरे विचार से यह सकारात्मक होगा। आरक्षण के प्रश्न पर गंभीर और व्यापक चर्चा अवश्य होनी चाहिए।

यूजीसी और आरक्षण विमर्श श्रम और बुद्धि के संतुलन की चुनौती

मैं तीन दिनों तक यूजीसी के विषय पर किसी भी प्रकार की चर्चा से बचता रहा, क्योंकि मुझे लगता था कि कहीं न कहीं कोई गलती या भ्रम है। जब तक तथ्य स्पष्ट न हो जाएँ, तब तक कुछ भी लिखना या बोलना उचित नहीं माना। किंतु मेरे कुछ मित्रों ने लगातार मुझ पर इस विषय में लिखने का आग्रह किया। अंतत: मैंने सोचा कि संक्षेप में अपने विचार रख दूँ। मैं एक उदाहरण से अपनी बात शुरू करता हूँ। मान लीजिए कि आठ लोगों ने मिलकर किसी कमजोर महिला के गहने और सामान लूट लिए। सुरक्षित स्थान पर पहुँचने के बाद उनके बीच आपसी बँटवारे को लेकर विवाद खड़ा हो गया और वे न्याय के लिए मेरे पास आ गए। मैं जानता था कि वे लूट का सामान बाँटने आए हैं, जबकि मेरा मानना था कि वह संपत्ति उसके वास्तविक स्वामी को लौटनी चाहिए। किंतु वे केवल आपसी हिस्सेदारी में न्याय चाहते थे, मूल प्रश्न पर विचार नहीं करना चाहते थे। यूजीसी के संदर्भ में जो टकराव दिखाई दे रहा है, वह मुझे कुछ हद तक इसी प्रकार का प्रतीत होता हैकृजहाँ मूल प्रश्न से अधिक बँटवारे का प्रश्न प्रमुख बन गया है। मेरे विचार में, अतीत की नीतियों में ग्रामीण श्रमजीवी वर्ग पर करों का अधिक भार पड़ा और शिक्षा तथा बौद्धिक वर्ग पर अपेक्षाकृत अधिक संसाधन व्यय किए गए। अब शिक्षा और सुविधाओं के वितरण को लेकर विभिन्न सामाजिक वर्गों के बीच संघर्ष उभर रहा है। प्रश्न यह है कि इस बहस में श्रमजीवी वर्ग के व्यापक हितों की चर्चा कितनी हो रही है। वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों को देखते हुए संभव है कि सरकार से कोई त्रुटि हुई हो और वह उसे सुधार भी ले। किंतु मेरा मूल प्रश्न श्रम और बुद्धि के बीच संतुलन से जुड़ा हैकृक्या इस असंतुलन पर गंभीर विचार हो रहा है? वर्तमान भारत में यूजीसी को लेकर जो विवाद दिख रहा है, उसमें विभिन्न पक्ष अपनी-अपनी भूमिका निभा रहे हैं। मेरा मानना है कि समाज में जातीय भेदभाव की प्रवृत्ति दीर्घकाल में कम हुई है, यद्यपि इसके आकलन पर अलग-अलग मत हो सकते हैं। फिर भी, यह आवश्यक है कि किसी भी नीति या न्यायिक दृष्टिकोण में समाज में समरसता बढ़ाने का उद्देश्य प्रमुख रहे, न कि विभाजन को प्रोत्साहन मिले। आदिवासी, दलित, पिछड़ा और सवर्णकृसभी वर्गों के नेताओं को देशहित में संतुलित और दूरदर्शी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। पिछले कुछ दिनों में यूजीसी से संबंधित घटनाक्रम अत्यंत तीव्र गति से बदलता रहा। हर क्षण परिस्थितियाँ बदलती प्रतीत होती थीं और

स्पष्ट समझ बनाना कठिन हो रहा था। अंततः जब स्थिति कुछ स्थिर हुई, तो लगा कि यह पूरा घटनाक्रम राजनीतिक रणनीति के एक बड़े खेल का हिस्सा था। विभिन्न दलों और नेताओं ने अपने-अपने दृष्टिकोण से इसे प्रस्तुत किया। किसने यह सब योजनाबद्ध रूप से किया और किसने परिस्थितियों के अनुसार निर्णय लिएकृयह कहना कठिन है, परंतु इतना स्पष्ट है कि इस विवाद ने आरक्षण जैसे महत्वपूर्ण विषय पर एक नई बहस को जन्म दिया है। संभव है कि अब तक जिस समाधान की दिशा में विचार हो रहा था, उसके अतिरिक्त अन्य विकल्पों पर भी चर्चा प्रारंभ हो। मेरा अब भी मानना है कि आरक्षण के दीर्घकालिक समाधान का संबंध श्रम और बुद्धि के बीच बढ़ती खाई को कम करने से है। यदि समाज इस मूल प्रश्न पर गंभीरता से विचार करे, तो यह विवाद भी किसी सकारात्मक दिशा का कारण बन सकता है। इन तीन-चार दिनों तक मैं इस पूरे घटनाक्रम से व्यथित रहा, किंतु यदि इससे व्यापक और रचनात्मक विमर्श की शुरुआत होती है, तो यह संतोष का विषय हो सकता है।

व्यवस्था बनाम सरकार मूल अंतर और संवैधानिक पुनर्विचार की आवश्यकता

तंत्र और सरकार के बीच क्या अंतर है, इस पर आज विस्तार से चर्चा नहीं करेंगे। किंतु इतना अवश्य समझना आवश्यक है कि व्यवस्था और सरकार दोनों एक ही चीज़ नहीं हैं। व्यवस्था एक व्यापक तंत्र या प्रणाली होती है, जिसके अंतर्गत सरकार कार्य करती है। मेरे विचार से हमारी संवैधानिक व्यवस्था के मूल स्वरूप में ही कुछ गंभीर त्रुटियाँ रह गईं। उदाहरण के लिए, संविधान में जाति और धर्म को किसी न किसी रूप में मान्यता मिली, जबकि परिवार और गाँव जैसी मूल सामाजिक इकाइयों को व्यवस्था के केंद्र में स्थान नहीं दिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि संविधान निर्माण की प्रक्रिया में समाज और राज्य के भेद को पर्याप्त स्पष्टता से नहीं समझा गया। समाज और राज्य की भूमिकाएँ अलग-अलग होती हैं। छुआछूत जैसी सामाजिक बुराइयों को समाप्त करना मूलतः समाज का दायित्व है, जबकि आतंकवाद या अपराध पर नियंत्रण सरकार का कार्य है। यदि इन दोनों की भूमिकाएँ उलट जाएँ, तो असंतुलन उत्पन्न होता है। सामाजिक सुधार का क्षेत्र समाज के नेतृत्व में होना चाहिए और राज्य को मुख्यतः विधि-व्यवस्था तथा अपराध नियंत्रण तक सीमित रहना चाहिए। इसी कारण मेरा मानना है कि केवल सत्ता परिवर्तन पर विचार करना पर्याप्त नहीं है, बल्कि व्यवस्था परिवर्तन पर गंभीर चिंतन होना चाहिए। समस्या केवल सरकार में नहीं, बल्कि उस संवैधानिक ढाँचे में भी हो सकती है जिसके अंतर्गत सरकार कार्य करती है। जातिवाद, सांप्रदायिकता, छुआछूत, चरित्र पतन, श्रम शोषण और महिला उत्पीड़न जैसी समस्याएँ सामाजिक चेतना और नैतिक सुधार से ही दूर हो सकती हैं; इन्हें केवल कानून के माध्यम से समाप्त करना कठिन है। इसलिए आवश्यकता एक ऐसी संवैधानिक व्यवस्था की है जिसमें समाज और सरकार की भूमिकाएँ स्पष्ट रूप से परिभाषित हों और दोनों अपने-अपने क्षेत्र में उत्तरदायित्व निभाएँ, बिना अनावश्यक हस्तक्षेप के।

ज़ूम "चर्चा कार्यक्रम" से :-

विषय चुनावी राजनीति

अगर हम राजनीति की बात करें तो पाते हैं कि इसके दो पक्ष होते हैं- सैद्धांतिक और व्यावहारिक। राजनीतिक शास्त्र की किताबों में राजनीति के बारे में जो बातें लिखी हुई है सैद्धांतिक हैं। इसमें उच्च आदर्श और नैतिकता की वकालत की जाती है। राजनीति का दूसरा पक्ष है व्यावहारिक। यह सैद्धांतिक राजनीति से बिल्कुल अलग होता है। इसमें कूटनीति, जोड़-तोड़ और छल प्रपंच का इस्तेमाल किया जाता है। इस तरह से देखें तो हम पाते हैं कि राजनीति सिद्धांत और व्यवहार में एक दूसरे से बिल्कुल अलग है। हाल के वर्षों में भारतीय राजनीति सकारात्मक दिशा में जा रही है। पिछले 10 वर्षों से देखा जा रहा है कि राजनीति सही दिशा में जा रही है। इस तरह मजबूत चरित्र और पक्के इरादों वाला व्यक्ति हो तो कुछ भी हो सकता है। एक बात और विचारणीय है कि समाज के द्वारा विधायिका में भेजे गए किसी भी अपराधी को कानून के द्वारा रुकना कितना उचित है। ऐसे देखा जाए तो अपराधियों को हर हाल में राजनीति में आने से रुकना होगा। मगर इसके दूसरे पहलू पर विचार करें तो पाते हैं कि जब समाज उसे व्यक्ति को चुन रहा है तब कानून को क्या अधिकार है उसे रोकने का। भले यह बात बाहरी तौर पर सुनने या देखने में अटपटी लगे लेकिन इसके गहरे निहितार्थ हैं। हम अक्सर भारतीय लोकतंत्र पर गर्व जताते हैं। अगर हम गहराई से इस लोकतांत्रिक व्यवस्था पर विचार करें तो पाते हैं कि इसमें कई खामियां हैं। भारतीय संविधान को संसद ने अपने नियंत्रण में कर लिया है। कानून निर्माण और संविधान संशोधन के मामलों में विधायिका ने संविधान को पंगु कर दिया है। एक तरह से

विधायिका की तानाशाही स्थापित हो गई है। जब तक हम इस विसंगति का हल नहीं ढूंढ लेते तब तक भारतीय लोकतंत्र सही मायने में या आदर्श रूप से लोकतंत्र नहीं हो सकता। चर्चा सार्थक एवं उद्देश्य पूर्ण रही।

विषय राइट टू रिकॉल

राइट टू रिकॉलश् एक राजनीतिक अवधारणा है जिसका मतलब है अपने जनप्रतिनिधि को वापस बुलाने का अधिकार। सिद्धांत है कि जब कोई किसी को नियुक्त कर सकता है तो वह उसे हटा भी सकता है। अगर हम इस सिद्धांत को आधार बनाएं तो पाते हैं कि राइट टू रिकॉल सही है। वर्तमान समय में भी इसे लेकर कई बार मांग की गई है लेकिन राजनेताओं ने इसे अव्यावहारिक कह कर खारिज कर दिया। अगर हम इसके इतिहास पर नजर डालें तो पाते हैं कि एथेंस में इस तरह की व्यवस्था थी। वैदिक युग में भी अयोग्य राजा को हटाने की व्यवस्था थी। जहां पर प्रत्यक्ष लोकतंत्र संभव है वहां पर यह व्यवस्था हो सकती है। भारत के कुछ राज्यों के स्थानीय निकाय में राइट टू रिकॉल को लागू किया गया है। संविधान निर्माण के समय एम एन राय और जयप्रकाश नारायण ने इसकी जोरदार मांग की थी। भीमराव अंबेडकर ने इसे यह कहकर खारिज कर दिया कि भारत जैसे अविकसित लोकतंत्र में यह संभव नहीं है। अगर हम भारतीय संदर्भ में बात करें तो पाते हैं कि ऐसा होना बहुत मुश्किल है। देश का विशाल क्षेत्रफल, बड़ी जनसंख्या और राजनीति की प्रकृति ऐसे कारक हैं जो इसके लागू होने में बाधक हैं। राजनेता भी अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर इसके मार्ग में बाधाएं खड़ी करते हैं। यह बात विचारणीय है कि राइट टू रिकॉल नेताओं की मनमानी और निरंकुशता को रोकने में सहायक हो सकता है। इसके लिए अगर किसी निर्वाचन क्षेत्र के 50% से अधिक वोटर किसी जनप्रतिनिधि को वापस बुलाने के लिए मत देते तो यह हो सकता है। चर्चा के दौरान वक्ताओं ने अपने विचार रखे। निश्चय ही इससे राइट टू रिकॉल के प्रति जागरूकता का भाव उत्पन्न हुआ।

विषय राष्ट्रपतीय प्रणाली

आजादी के बाद हमने संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की। इस शासन में राष्ट्रपति नाममात्र का प्रधान होता है। असली शक्ति प्रधानमंत्री मे निहित होती है जो मंत्रिमंडल का प्रधान होता है। मंत्रिमंडल लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होता है। इस तरह की शासन व्यवस्था ब्रिटेन में भी है। दूसरी शासन व्यवस्था अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली है जिसमें राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान होता है। उसके सहायक विधायिका से या बाहर से भी हो सकते हैं। इन दोनों शासन व्यवस्था का आधार विधायिका और कार्यपालिका के बीच संबंध है। भारत में भी यह बात कही जाती है कि अगर यहां पर अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली होती तो ज्यादा बेहतर होता। यह बात बहस का विषय हो सकता है कि संसदीय शासन प्रणाली बेहतर है या अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली। अगर हम भारत को देखें तो यहां शुरू से ही केंद्रीयकरण है। परिवार से लेकर समाज तक हम देख सकते हैं।

अगर हम अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली को अपने तो क्या गारंटी है कि यह सफल होगी। इसके अलावा जनमत को इसके लिए तैयार करना भी अत्यंत मुश्किल होगा। इससे अच्छा है कि हम दलविहीन शासन प्रणाली की ओर बढे। हमारे मार्गदर्शक बजरंगमुनि जी ने भी यही बात कही। चर्चा सार्थक एवं उद्देश्य पूर्ण रही।

साथियों के कलम से

धर्म का संप्रदाय में पतन - ज्ञानेन्द्र आर्य

आज समाज में एक बड़ी उलझन यह है कि धर्म और संप्रदाय को एक ही समझ लिया गया है। इसी भ्रम से टकराव पैदा होता है। लोग धर्म की रक्षा के नाम पर दरअसल संप्रदाय की रक्षा कर रहे होते हैं। जब तक दोनों के बीच का अंतर स्पष्ट नहीं होगा, तब तक न धर्म को सही अर्थ में समझा जा सकेगा और न सामाजिक तनाव कम होगा। मौलिक चिंतक बजरंग मुनि के अनुसार धर्म और संप्रदाय का अंतर आस्था का नहीं, बल्कि स्वरूप और उद्देश्य का है।

धर्म क्या है?

धर्म कोई संस्था नहीं है। वह किसी संगठन की सदस्यता नहीं है। वह कोई बाहरी पहचान नहीं है। धर्म एक जीवन पद्धति है। धर्म गुणों पर आधारित होता है, संख्या पर नहीं।

धर्म का अर्थ है

ऐसा कर्तव्य जो किसी अन्य के हित में, बिना स्वार्थ के किया जाए। धर्म अधिकार की भाषा नहीं बोलता। वह कर्तव्य की भाषा बोलता है। धर्म किसी पर नियंत्रण नहीं चाहता, वह मनुष्य को भीतर से सुधारना चाहता है।

धर्म मंदिर, मस्जिद, चर्च या किसी पुस्तक में बंद नहीं रहता। वह आचरण में दिखाई देता है। यदि किसी व्यक्ति का व्यवहार न्यायपूर्ण, संयमित और सत्यनिष्ठ है, तो वही उसका धर्म है। धर्म मूलतः व्यक्तिगत है, लेकिन उसका प्रभाव समाज पर पड़ता है।

संप्रदाय क्या है?

संप्रदाय एक संगठित संरचना है। वह किसी विशेष उपासना पद्धति, परंपरा या ग्रंथ के आधार पर लोगों को जोड़ता है। संप्रदाय पहचान देता है। वह बताता है कि "तुम किस समूह से जुड़े हो।" संप्रदाय का स्वभाव संगठनात्मक होता है। इसलिए वह संख्या पर ध्यान देता है। उसके लिए

यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि उसके अनुयायी कितने हैं। जहाँ धर्म पूछता है"मुझे क्या सही करना चाहिए?" वहाँ संप्रदाय पूछता है"मेरे लोग कितने हैं, और वे कितने संगठित हैं?" यहीं से दोनों की दिशा अलग हो जाती है। धर्म और संप्रदाय का मूल अंतर धर्म न्याय पर आधारित होता है। संप्रदाय अपनत्व पर आधारित होता है। धर्म विवेक और विचार को महत्व देता है। संप्रदाय परंपरा और आस्था को। धर्म परिस्थिति के अनुसार अपने आचरण को सुधार सकता है। संप्रदाय में परिवर्तन कठिन होता है, क्योंकि वह स्थिर विश्वासों पर टिका होता है। धर्म व्यक्ति को स्वतंत्र मानता है। संप्रदाय व्यक्ति को अपने संगठन का अंग मानता है।

ईश्वर और उपासना का भ्रम

अक्सर धर्म को सीधे ईश्वर और पूजा से जोड़ दिया जाता है। लेकिन धर्म के पारंपरिक दस लक्षणों में ईश्वर या पूजा का उल्लेख नहीं मिलता।

ये दस गुण बताए गए हैं -

धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इंद्रिय निग्रह, धीरता, विद्या, सत्य और अक्रोध। इनमें कहीं भी पूजा पद्धति की बात नहीं है। ये सब आचरण के गुण हैं। इसका अर्थ यह है कि उपासना संप्रदाय का विषय हो सकती है, लेकिन धर्म का मूल आधार आचरण है।

उत्पत्ति का अंतर

धर्म शाश्वत है। उसका कोई संस्थापक नहीं होता। वह मानव स्वभाव के नैतिक तत्वों से जुड़ा है। संप्रदाय का जन्म किसी व्यक्ति, किसी ग्रंथ या किसी ऐतिहासिक घटना से होता है। समय के साथ जब कोई संप्रदाय मजबूत हो जाता है, तो वह स्वयं को धर्म कहने लगता है। यहीं भ्रम स्थायी हो जाता है।

पतन कैसे होता है?

धर्म का पतन तब शुरू होता है जबकृ कर्तव्य की जगह अधिकार की भाषा आने लगे न्याय की जगह पक्ष चुन लिया जाए आचरण की जगह पहचान को महत्व मिलने लगे प्रश्न पूछने के बजाय केवल अनुशासन की मांग की जाए संवाद की जगह प्रतिस्पर्धा शुरू हो जाए जब कोई परंपरा दूसरों से सीखने और विचार करने के बजाय उन्हें हराने की मानसिकता अपनाती है, तो वह धर्म नहीं रहती, वह संगठन बन जाती है।

निष्कर्ष

यह चर्चा किसी विशेष आस्था के विरोध में नहीं है। यह उस प्रक्रिया की पहचान है जिसमें धर्म धीरे-धीरे संप्रदाय में बदल जाता है। धर्म मनुष्य को नैतिक बनाता है। संप्रदाय उसे अनुयायी बनाता है। और सत्ता के लिए नैतिक व्यक्ति से अधिक उपयोगी एक अनुयायी होता है। यहीं से अगला प्रश्न उठता है यदि धर्म पहचान में बदल जाए और संगठन यह तय करने लगें कि क्या सही है और क्या गलत, तो अंतिम निर्णय कौन करेगा? क्या वह विवेक होगा? क्या वह सत्ता होगी? या फिर भीड़? अगला अध्याय इसी सवाल का उत्तर खोजेगा।

जीवन पथ

(विवेक और आदित्य का सवांद)

तब मैने पहले भी कहा है कि समाज सर्वोच्च है। वह स्वतन्त्रता पूर्वक ऐसी व्यवस्था के विरूद्ध जैसा भी निर्णय करे, व्यक्ति द्वारा उसे स्वीकार करना ही नीति की मर्यादा का पालन करना है। .....विवेक अपनी बात पूरी करता है तो इस बार उनके बीच संवाद शून्यता स्थापित हो जाती है। कुछ समय बाद जिसे भंग करते हुए कोतूहलतापूर्वक आदित्य कहता है- मैं यह जानना चाहता हूँ कि तू इतना सोचता कैसे है विवेक? हर प्रश्न पर तू बहुत अजीब तर्क हमारे सामने प्रस्तुत करता है। अधिकांश अवसरों पर जिसे स्वीकार करना ही हमारी बाध्यता होती है। ऐसा कुछ नहीं है आदित्य। न मेरी विचार करने की क्षमता बहुत ज्यादा है और न तेरी बहुत कम। ....मैं कोई हितोपदेशक नहीं हूँ, लेकिन तेरा तो भाई भी हूँ और मित्र भी, तुझे किसी भी प्रकार मेरी प्रशंसा नहीं करनी चाहिए। यह तो आत्मघात के समान है। क्योंकि मित्र और भाई को परस्पर सम्बन्धों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी प्रकार प्रशंसा नहीं करनी चाहिए। लेकिन आपका चरित्र कभी निस्तेज नहीं होगा भैया। व्यक्ति योग्यता के अनुसार प्रतिष्ठा पा ही लेता है। यद्यपि आपने ठीक ही कहा है कि आत्म-प्रशंसा करना या अन्यत्र स्रोत से स्वीकार करना आत्मघात ही होता है लेकिन आपकी योग्यता का जिक्र केवल आदित्य भैया या मैं ही नहीं कर रहे है बल्कि ऐसा तो गाँव के कई लोग कहते हैं। ....इस बार विवेक की छोटी बहन मुन्नी, उन दोनों के प्रकरण को सुनते हुए यह बात कहती है। इस पर विवेक प्रतिवाद करता है- फिर भी हमे इस विषय पर चर्चा नहीं करनी चाहिए। जब तू मर्यादाओं का इस प्रकार पालन

करता है विवेक तो लगता है कि मैने तेरे चरित्र मे वे संस्कार रोप दिए हैं जो तेरे पिता की इच्छा के अनुरूप हैं। तेरे ऐसे आचरण से मुझे बहुत संबल मिलता है। माँ का वक्तव्य सुनकर विवेक उनसे आग्रह पूर्वक कहता है-माता-पिता की इच्छा सन्तान के लिए आदेश के समान होती है। आप मुझे आशीर्वाद दें कि मैं जीवन पर्यन्त मर्यादाओं का पालन करता रहूँ।ऐसा ही होगा बेटे। ईश्वर की कृपा से तू निश्चित रूप से ऐसा ही करेगा। ....कुछ क्षण चुप रहकर माँ पुनः कहती है- तुम दोनों ने बातें बहुत कर ली है। अब उठो और खेत का काम निपटा आओ। मुन्नी तू भी विवेक के साथ चली जा। ये खेत में क्या करेगी माँ, वहाँ मैं और विवेक चले जाते हैं। अरे, ये किसान की बेटी है। खेत-खलिहान की तासीर से वाकिफ नहीं होगी तो भला कैसे काम चलेगा? लेकिन हम इसकी शादी ऐसे परिवार में करेगें जहाँ खेती नहीं व्यापार होता हो! आदित्य भैया, आपको बस यही बात याद रहती है। जाओं मैं आपसे बात नहीं करूँगी। अच्छा तो तू बता देना मेरी गुडिया। हम कोई व्यापारी नहीं तो ऐसा बहनोई खोजेगे जो कहीं नौकरी करता हो। भैया। याद रखना मैं आपसे कभी बात नहीं करूँगी। लेकिन मैं तुझसे बात किए बिना नहीं रह सकूँगा और न मैं हमेशा विवेक के जैसी बातें कर सकता हूँ आखिर हमे तेरी शादी तो करनी ही होगी। माँ! देख लो भैया को। अरे पगली मैं क्या देख लूँ, भाई-बहन में जरा बहुत तकरार न हो तो परिवार कैसा? इसने तेरी चिढ निकाली है तू इसकी कोई ढूँढ ले!क्या मुझे भी ऐसा कुछ करना पड़ेगा भैया? बहन को जैसा करने से खुशी मिल जाए, भाई को उसी से सुकून मिल जाता है। अगर यह बात सच है तो बहन पर भी ये नियम लागू होता होगा। मैं आपकी किसी बात की अवहेलना नहीं कर सकती भैया। आदित्य, सर हिलाकर उसकी बात को स्वीकृति देता है। कुछ क्षण के बाद वह कहता है- खैर अब हमें जीविका से सम्बन्धित कार्य कर आना चाहिए।और वे दोनों खेत की तरफ निकल जाते हैं। रास्ते में विवेक, आदित्य से जिक्र करता है- हमे अपने परिवार की आय बढाने के बारे में सोचना चाहिए। क्या तू अपने विचारों की दिशा बदलनी चाहता है विवेक, मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ! तूने घर पर मजाक में ही सही लेकिन जब मुन्नी की शादी का जिक्र किया तो मुझे ये ख्याल आया कि दो-चार साल में जब भी ये काम किया जाएगा तो खर्च कैसे वहन किया जा सकेगा? तू हर बात को इतनी गम्भीरता से लेता है विवेक, अपनी कुछ समझ मे नहीं आता है। क्या मैं तेरे साथ नहीं हूँ और कहीं तेरी नौकरी लग गयी तो समस्या हल हो जाएगी! पता नहीं किसने समाज में ये दस्तूर बनाए हैं आदित्य। जिन्हें निभाने के साधन जुटाने में कुछ की जिन्दगी निकल जाती है और कुछ की जिन्दगी में ये दस्तूर ऐयाशी के मौके लाते हैं। ये तो तूने बहुत कडवी बात कही है विवेक। क्या जिम्मेदारी को नकारना चाहता है? क्या तू मुझे इतना कायर समझता है जो दायित्व को ही नकार दूँगा! तो फिर यह क्या बात है? कभी-कभी ये आर्थिक कमजोरी बडी लाचारगी का भाव मन में पैदा कर देती है। खैर इसका कोई न कोई तो समाधान भी होगा, जैसा वक्त आएगा देखा जाएगा! हाँ तेरे इस नजरिए से मैं भी इत्तफाक रखता हूँ। अब रही परिवारों की आय बढाने की बात तो हमे गाँव में रहकर ही इसके प्रयास करने होगें। तेरी बात तो ठीक है लेकिन खेती जैसे पेशे से अपेक्षा कैसे की जा सकती है? तो फिर हमे क्या करना चाहिए? विकल्प कहाँ है? चल फिलहाल ऐसा ही करने की योजना बनाते हैं। इसमें जो होगा देखा जाएगा।

संस्थागत समाचार

रामानुजगंज में ज्ञानोत्सव 2026 का विराट शुभारंभ

550 कलशों की गरिमा, सैकड़ों ध्वजों की आभा और वैदिक मंत्रों से गुंजायमान हुआ नगर रामानुजगंज। नगर ने गुरुवार को एक ऐतिहासिक और आध्यात्मिक दृश्य का साक्षी बनकर स्वयं को धन्य अनुभव किया। ज्ञानोत्सव 2026 का शुभारंभ 550 कलशों और संस्था के सैकड़ों ध्वजों के साथ निकली भव्य शोभायात्रा से हुआ। नगर की प्रमुख सड़कों पर जब केसरिया ध्वज लहराए और श्रद्धालु कलश धारण कर आगे बढ़े, तो वातावरण श्रद्धा, ऊर्जा और उत्साह से भर उठा। मार्ग में विभिन्न स्थानों पर पुष्पवर्षा कर श्रद्धालुओं का स्वागत किया गया। इस आयोजन को क्षेत्र के विभिन्न प्रमुख समाचार पत्रों ने प्रमुखता से प्रकाशित किया है, जिससे इसकी व्यापकता और प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। कार्यक्रम के शुभारंभ अवसर पर संस्था के मार्गदर्शक बजरंग मुनि जी के कर कमलों से विधिवत ध्वजारोहण संपन्न हुआ। इस क्षण ने उपस्थित जनसमूह में एक नई प्रेरणा और संकल्प का संचार किया। आयोजन स्थल पर सुसज्जित भव्य पांडाल में आगामी दिनों की विस्तृत कार्यक्रम श्रृंखला की शुरुआत हुई। प्रथम दिवसरू वैदिक यज्ञ से आरंभ, विचार और कथा का संगम ज्ञानोत्सव के प्रथम दिन आज प्रातः 8रू00 बजे गायत्री यज्ञशाला में वैदिक यज्ञ के साथ आध्यात्मिक अनुष्ठानों की शुरुआत होगी। सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान सुधांशु जी महाराज के ओजस्वी पौरोहित्य में यज्ञ संपन्न होगा। आज के यज्ञ के यजमान मनीष अग्रवाल, द्वारिका पांडे, अनुप गुप्ता तथा अजय गुप्ता (मनोकामना

वस्त्रालय) रहेंगे। प्रातः 11रू00 बजे लिटिल फ्लावर स्कूल प्रांगण में “ग्रामसभा की व्यवस्था में भूमिका” विषय पर वैचारिक संगोष्ठी आयोजित होगी। यह सत्र सामाजिक संरचना, सहभागिता और स्थानीय प्रशासन की भूमिका पर गंभीर मंथन का मंच बनेगा। दोपहर 2रू00 बजे से आमंत्रण धर्मशाला में भागवत कथा का वाचन प्रारंभ होगा। सायं 5रू00 बजे ज्ञान कथा तथा 6रू30 बजे सनातन कथा का आयोजन रहेगा। वहीं सायं 6रू00 बजे स्वामी त्याग मूर्ति जी सनातन संस्कृति और भगवान राम के आदर्शों पर विशेष प्रवचन देंगे। दिनभर रहेगा भंडारा,

आध्यात्मिक ऊर्जा से सराबोर हुआ नगर श्रद्धालुओं के लिए प्रातः 11रू00 बजे से रात्रि 10रू00 बजे तक भंडारे की व्यवस्था की गई है। आयोजन समिति ने अधिकाधिक श्रद्धालुओं से सहभागी बनने की अपील की है। ज्ञानोत्सव 2026 केवल धार्मिक आयोजन भर नहीं, बल्कि वैचारिक जागरण और सांस्कृतिक चेतना का समन्वित प्रयास बनकर उभर रहा है। पहले ही दिन जिस प्रकार नगरवासियों ने सहभागिता दिखाई है, उससे स्पष्ट है कि आगामी दिनों में यह उत्सव और अधिक व्यापक स्वरूप लेगा